



MISSION MEDITATION

Established by :

Enlightened Mystic Gurumaiya Dr. Hareshwarideviji

MAUN MANDIR

(A place for silence)

at. & po. Chapad, dist. Vadodara, Gujarat, INDIA

Ph. +91 9913153609, 7285085733



विभाग - 11

प्रार्थना विभाग

सर्वनमस्कार, प्रार्थना तथा
उपनिषद् के शांति मंत्रों पर
आधारित ध्यान विधियाँ



भूमिका....

प्यारे साधको!

मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक शांति के लिए प्रार्थना का उद्भव हुआ होगा। एक विशेष अर्थ में जो ध्वनित होती है वह है प्रार्थना। प्रार्थना शाब्दिक होने पर भी शब्दों के पार है। उसके भाव जगत के सामने सारे शब्द छोटे पड़ जाते हैं। मेरी समझ के अनुसार उपनिषद् के जितने भी शांति मंत्र हैं उन सबमें एक वैश्विक प्रार्थना है अर्थात् विश्वकल्याण के भाव से भरे हुए मंत्रों के उद्गार हैं। मैं चाहती हूँ कि मेरे साधक वेदांत अर्थात् वेदों के सार रूप उपनिषदों के सभी शांति मंत्रों को समझे और उन मंत्रों पर विश्वकल्याण के भाव से ध्यान भी करें।

हमारे प्रमुख उपनिषदों के आरंभ और अंत में एक ही मंत्र होता है। यह हमारे ऋषियों द्वारा दी गई परंपरा है। ऐसा क्यों? मेरे अनुसार, मैं इतना ही अर्थ करती हूँ कि ज्ञान की सभी बातें तभी सार्थक होती हैं कि आरंभ और अंत में आप व्यक्ति न रहकर वैश्विक बन जाओ। आपकी बात व्यक्तिगत न रहकर समष्टिगत बन जाए। दोस्तो, विश्वमंगल की भावना से भरी हुई हर बात कल्याणकारी बन जाती है।

प्यारे साधको!

उपनिषद् का अर्थ है निकट बैठो। आप कहेंगे कि किसके निकट ? मैं कहती हूँ कि परमात्मा के निकट। उपनिषद् ज्ञान से भरे हैं, ब्रह्मवाद से भरे हैं, उनके शब्द ब्रह्म हैं। समझदार आदमी उपनिषद् पढ़कर जाग उठता है, उसका सत्य में प्रवेश हो जाता है। मेरे अनुसार वही सत्यज्ञान है जो सत्य का साक्षात्कार करा दे। आपमें सत्यबोध जगा दे।

दोस्तो, उपनिषदों में यह क्षमता है। उपनिषद् वेदों का दोहन हैं। अध्यात्मसार हैं। केवल भारत में ही नहीं परंतु समग्र विश्व के आस्तिक राष्ट्रों में आध्यात्मिक साहित्य को सविशेष सन्मान मिलता है। आध्यात्मिक ग्रंथ खास स्थान पर विशेष सन्मान से रखे जाते हैं। उन ग्रंथों की पूजा होती है। वे पवित्र कहे जाते हैं। क्यों ? क्योंकि उनमें मनुष्यता को पावनता में प्रवेश कराने की क्षमता है। वे ग्रंथ मनुष्य को चेताते हैं, जगाते हैं। मनुष्य को खुद के निकट जाने का मौका देते हैं। अज्ञान के आवरणों को हटा देते हैं। कभी कभी तो मनुष्य का रूपांतरण तक कर देते हैं। ऐसे सभी ग्रंथों में उपनिषदों का स्थान मेरी दृष्टि से विशेष है। क्योंकि संक्षिप्त में सीधा सीधा सत्य है। उपरांत उसमें कोई साम्प्रदायिक या जाति-पांति का बंटवारा अथवा किसी धर्म भेदों की बात नहीं है परंतु समग्र मनुष्यता के कल्याण की बात है। हमारे उपनिषद् सनातन सत्त्यों से भरे हैं और मानवमात्र के लिए उपयोगी हैं।

इत्तफाक से वेदों को अपौरुषेय माना गया और यह वाणी भारत में उतरी है यह बात अलग है परंतु उसकी उद्घोषणा पूरी मनुष्य जाति के कल्याण के लिए हुई है। उसमें भारत, रूस, अमरीका या यूरोप का कोई

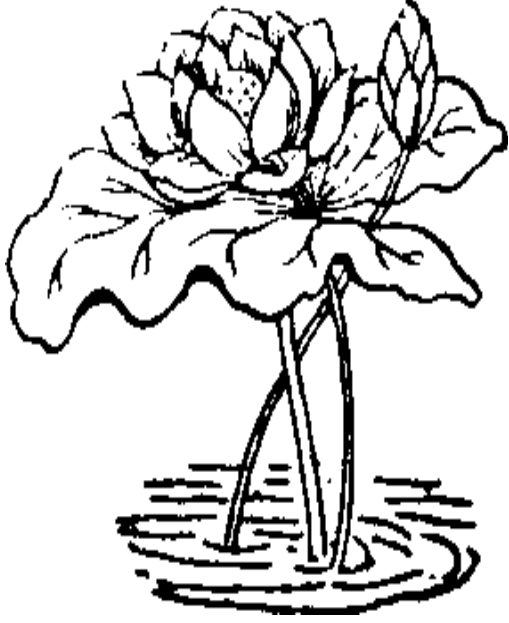
प्रांतीय भेद नहीं है। वेद की बातें मनुष्य जीवन की प्रत्येक पहलू को छूती और उसे संवारती हुई आगे बढ़ती है।

दोस्तो, वेद के सार रूप उपनिषदों के शांति मंत्र विश्व कल्याण के लिए ध्वनित हुई अपूर्व ऋचाएं हैं। जो मन के पार गए हुए ऋषिओं के द्वारा उतरी होंगी। उनमें बोद्धिकता नहीं परंतु विशुद्ध प्रज्ञा और वैश्विक हित का दर्शन होता है। उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर पूरी समष्टि के लिए कल्याण की भावना का दर्शन होता है। इसीलिए शायद वेदों को अपौरुषेय माने गए हैं।

प्यारे साधको!

मेरे अनुसार उस भाव में डूबकर ध्यानस्थ होना चाहिए। वह ध्यान उपनिषद के सनातन सत्यों को जिंदा रखेगा। इसमें उपनिषद के जो परम विचार हैं उनके प्रति आपको अपनी समग्र चेतना को मोड़ना है। बस, आपका उन मंत्रों के प्रति अपनी चेतना को मोड़कर उस भाव में स्थिर होना ही ध्यान बन जाएगा।





धरणा - 81

सर्व नमस्कार भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 81

सर्वात्मने नमः करि भावा, जो साधक ने सर्व रूप ध्यावा।
वंदन भक्ति सहज ही सधहीं, राम सर्व रूप क्षण में रिजहिं॥

ध्यान विधि - 81

सर्व जीवों को शुद्ध भाव
से नमन करते हुए उस
नमस्कार को ध्यान की
भूमिका तक ले जाओ
और जीव प्राणीमात्र में
परमात्मा का अनुभव कर
लो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 9

वि

विध प्रकार के अहंकार और बौद्धिक विडंबनाओं के कारण आदमी सही जगह पर भी झुकना चूक जाता है। मैं कहती हूँ कि आप झुको या न झुको, अस्तित्व को कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि इस विराट अस्तित्व के सामने तो आप बहुत वामन हैं। जहाँ हिमालय से उतरकर गंगा जैसी महान नदियां भी झुक रही हैं; वहाँ आपकी क्या औकात? मैं इस बात को जानबूझ कर रही हूँ जिससे आप जागो। आपकी झुन्न पड़ी हुई चेतना को चोट पहुँचे। बंद मस्तिष्क के द्वार खुल जाएं और आप झुकने

प्यारे साधकों!

अब मैं आपको ले जा रही हूँ नमस्कार ध्यान विधि की ओर। झुकना यह कुदरत का स्वभाव है, समष्टि की प्रकृति है। आपका सहज भाव से झुकना अहंकार से मुक्ति की निशानी है। झुकने में कभी छोटापन मत समझना। मैं जिसे झुकना कहती हूँ – वह है आंतरिक समझ; जो हृदय के शुद्धिकरण का परिपाक है। सरलता का प्रतिबिंब है, विनम्रता का परिणाम है। आपका झुकना जब वैश्विक बन जाता है तब हर स्थान पर आपके लिए परमात्मा हाज़िर है। मैंने एक भजन में लिखा है –

मैं सरमद हूँ नहीं या ना मेरे सर को कटाऊंगी।
तेरे कदमों में मालिक मैं मेरे मैं को झुकाऊंगी॥
मैं कह दूंगी सरे बाजार सबको नाच लो गा लो।
खुदी मिटने का 'मोहिनी' जश्न हर पल मनाऊंगी॥

झुक जा, झुक जा, झुक जा रे बंदा
झुकना है झुक जा, झुक जा।

दूर देख तू अंबर झुके
बरखा में घन रिम झिम झुके

सागर तरफ ये नदिया झुके
झम झम झरने झुके झुके
झुक जा, झुक जा, झुक जा रे बंदा
झुकना है झुक जा, झुक जा।

तरुवर देख जमीं पे झुके
डाली डाली पत्ते झुके
शाख पे लदा मिठा फल झुके
कलि संग फूल झुके
झुक जा, झुक जा, झुक जा रे बंदा
झुकना है झुक जा, झुक जा।

रामायन का राम भी झुके
गीता का घनश्याम भी झुके
पढ़ कुरान रहमान भी झुके
और जिसस का प्यार झुके
झुक जा, झुक जा, झुक जा रे बंदा
झुकना है झुक जा, झुक जा।

कोई गरज या मरज से झुके
कोई परज या फरज से झुके
मौत के आगे सब कोई झुके
स्नेह से संत झुके झुके
झुक जा, झुक जा, झुक जा रे बंदा
झुकना है झुक जा, झुक जा।

बुद्ध झुके महावीर भी झुके
योगी भोगी दिगम्बर झुके
ज़िंदा हैं तो झुके ले मोहिनी
मुरदा कैसे झुके झुके

झुक जा, झुक जा, झुक जा रे बंदा
झुकना है झुक जा, झुक जा।

प्यारे साधको!

संपूर्ण विधि को समझने के लिए यह एक भजन ही काफी है।

दोस्तो, झुकना यह कोई देहिक प्रक्रिया नहीं है। यह एक भावनात्मक श्रद्धापूर्ण घटना है। आप अपने जीवन में अनेक अनेक प्रकार से झुकते रहते हैं। जो कहीं भी नहीं झुक पाता है उसे जीवन के अंत में बुढ़ापा और मृत्यु झुकाती है। परंतु झुकना यह सृष्टि का नियम है। झुकने में जब भाव, प्रेम, आस्था और श्रद्धा का अनुसंधान होता है, तब वह वंदन बन जाता है। उस वंदन से आपके ऊपर अंतरिक्ष में से आशीर्वाद बरसते हैं।

दोस्तो, यहाँ एक बड़ा प्यारा शेर याद आ रहा है—

झुकता वही है जिसमें जान होती है
अकड़ तो मुर्दे की पहचान होती है।

विविध प्रकार के अहंकार और बौद्धिक विडंबनाओं के कारण आदमी सही जगह पर भी झुकना चूक जाता है। मैं कहती हूँ कि आप झुको या न झुको, अस्तित्व को कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि इस विराट अस्तित्व के सामने तो आप बहुत वामन हैं। जहाँ हिमालय से उतरकर गंगा जैसी महान नदियाँ भी झुक रही हैं; वहाँ आपकी क्या औकात? मैं इस बात को जानबूझ कर रही हूँ जिससे आप जागो। आपकी सुन्न पड़ी हुई चेतना को चोट पहुँचे। बंद मस्तिष्क के द्वार खुल जाएँ और आप झुकने की महिमा को जानो तथा वंदन के अर्थ और मर्म को समझो। मैंने एक सूफी भजन में लिखा है —

तू सुन या ना सुन

तू कर या ना कर

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 13

बंदगी होती है

सजदा होता है

सजदा होता है, खलक में..

सजदा होता है, खलक में..

पलक हर पल ज़मीं की ओर झुकती रहती है
अशक की लड़ियाँ भी गिरते गिरते बहती हैं
ज़ल्पों काली घनेरी घुंघराली लहराती हैं
बचपन हो, जवानि हो या उम्र ढलती हो
ज़मीं की ओर चलते देख तेरे पाँव को
कलाई से तू झुकते देख तेरे हाथ को

सजदा होता है

बंदा बंदगी चलती है

हर पल सजदा होता है

खलक में सजद हैता है

देख गंगा का गिरना और बादलों का बरसना
शाम ढलते सूरज का देख ज़मीं पे ही उतरना
फलक से तारे टूटकर हमारी ओर आना
चांदनी का बिखरकर धरती पर है देख चमकना
बर्फ हो कि हो पत्थर झुक के गिरता है यारो
पिघलता है वो यारो फिर से बनता है यारो

सजदा होता है

बंदा बंदगी चलती है

हर पल सजदा होता है

खलक में सजदा होता है

दोस्तो, झुकना यह एक प्रकार की बंदगी है। एक दूसरी बात भी याद रखो। अगर वंदन करना ही है तो उसमें गुटबंदी या धर्म की राजनीति मत लाना। वंदन को सांप्रदायिक न बनाओ, उसे सनातन बनाओ। समग्र अस्तित्व को झुको, महात्माओं को झुको। वंदन के बारे में अगर सीखना है तो जैनों का पंच नमोक्कार एक बहुत उत्तम मंत्र है। परंतु मेरी दृष्टि से वह भी सीमित है। चेतना तो सर्व जीवों में समान रूप से है। भारतीय शास्त्र कहता है कि आत्मा सो परमात्मा। और इसीलिए मैंने मंत्र दिया है ॐ सर्वात्मने नमः। अर्थात् सर्वात्म रूप जो चेतना है उसे झुकते रहो। सबको झुको।

प्यारे साधको!

अगर आपको लग रहा है कि वंदन ही उपलब्धि का उत्तम माध्यम है तो अब सभी आत्माओं के प्रति नमस्कार का भाव करो। कम से कम रोज आधे घंटे तक मानसिक रूप से वंदन करते रहो। इस तरह से पहले अहंकार को झुकाने के लिए मन को तैयार करो साथ में ॐ सर्वात्मने नमः मंत्र का उपांशु जाप (मुंह में बोलना, चिल्लाना नहीं) भी करते रहो। धीरे धीरे आपकी चेतना सर्ववंदन करने लगेगी फिर मंत्र का जाप करना नहीं पड़ेगा। अपनेआप आपके भावों से जीव प्राणी मात्र को वंदन होता रहेगा। यह ध्यान आपको राग-द्वेष, द्वैतभाव और अहंकार से मुक्ति देगा। पूरे अस्तित्व की ओर से आशीर्वाद बरसाने में माध्यम बनेगा और आपको विनम्र, शक्तिपूर्ण और दिव्य बना देगा।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 15

धरणा - 82

प्रार्थना ध्यान

ध्यान सूक्ति - 82

शुद्ध हृदय निःस्वार्थ बनी कीजे, त्वरित प्रार्थना का फल लीजे।
जब प्रार्थना ध्यान बनी जावे, तब साधक प्रत्यक्ष फल पावे॥

ध्यान विधि - 82

विशुद्ध हृदय से पूरे ब्रह्मांड
के प्रति प्रार्थनापूर्ण बनकर
परमसत्ता का प्रत्यक्ष
अनुभव कर लो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 19

मैं

यह कहना चाहती हूँ कि अपने निजि स्वार्थों के लिए की गई प्रार्थना प्रार्थना नहीं है। यह तो भगवान से मांगी गई भीख है। खैर! उसके दरबार में तो ज्ञानी और भक्त के सिवाय, सब भिखारी ही आते हैं। क्योंकि ज्ञानी आत्मसंतुष्ट होता है और भक्त समर्पण भाव से कहता है कि हे प्रभु! मेरा सबकुछ मेरे स्वयं के साथ तेरी शरण में है, तू अंतर्धामी है। शैतान के दिल को भी जानता है तो क्या भक्त के हृदय को नहीं जानता होगा? मैं जो समर्पित हूँ तो फिर मुझे मेरी क्या चिंता?

प्यारे साधको!

प्रार्थना को तथाकथित धार्मिक लोगों की भीड़ ने स्थूल और वाचिक बना दिया है। प्रार्थना में शब्दों की कोई खास आवश्यकता नहीं है। वह तो एक प्रकार की भावपूर्ण ध्यानस्थ अवस्था है। प्रार्थना की व्याख्या करते हुए मैं कहती हूँ कि भाव पूर्णता से गदगदित होकर दिव्य शक्ति का स्मरण करना अथवा किसी की पीड़ा की क्षणों में उसे अस्तित्व की ओर से मदद मिले ऐसे भावों को ब्रह्मांड में फैलाना। जहाँ आप खो जाओ और केवल प्रार्थना के भाव बने रहें।

परंतु आजकल क्या हो रहा है? अपने घर, दौलत, सन्तति, सम्पत्ति, नाम, सत्ता आदि प्राप्त करने के लिए आदमी अपने खास भगवान को प्रार्थना करता है। फिर अपनी मनचाही कुर्सी, वस्तु अथवा व्यक्ति को प्राप्त करने के लिए मिथ्या पुरुषार्थ भी कर लेता है। कभी घूस खिलाता है तो कभी गबन भी कर लेता है। ऐसा करने से कभी उसका स्वार्थ सध जाता है। इस तरह से आदमी खुद को और भगवान को दोनों को मूर्ख बनाता हुआ कहता है कि मेरी प्रार्थना सफल हुई। ऐसे लोगों को कौन

बताए कि जिसे तू प्रार्थना कहता है, वह तो तेरा नितांत स्वार्थ था। तूने प्रार्थना को भ्रष्ट कर रखा था। भगवान के दरबार में ऐसी प्रार्थनाओं का स्वीकार कभी नहीं होता।

एक संत ने अच्छी बात बताई है कि भगवान आपके हाथ भरे हैं कि खाली यह कभी नहीं देखते हैं परंतु गलत कामों से सने हुए तो नहीं हैं? यह जरूर देखते हैं। गलत कामों से सने हुए हाथों को धन से भरकर भगवान के मंदिर में जाएंगे तो आपका धन पुजारी भले स्वीकारे परंतु परमात्मा को हरगिज़ मंजूर नहीं होगा। पुजारी तो खुश होकर ऐसे धन का स्वीकार कर लेता है। आपको पूजा विधि कराके धन के अनुसार फूलमाला और प्रसाद दे देते हैं, ऐसे में आप, खुद से और पुजारी से, दोनों से ठगे जाते हो।

आज के मंदिर में सबसे बढ़िया व्यवस्था तो दान पेटियों की होती है। जो बेचारी गूंगी है। वह कभी आपको पूछती नहीं कि तू परम पावन परमात्मा को अर्पण करने के लिए जो धन लाया है वह उत्तम है या कनिष्ठ; वह धन कहाँ से आया है? न ही ऐसा विचार आपको कभी आता है। एक गूंगा मस्तिष्क और गूंगी दानपेटी के बीच में धन के बदले में पुण्य का पिटारा भर जाता है। यह कैसी बेवकूफी है! लोग कब बहार आएंगे ऐसी आत्मछलनाओ में से। खैर!

मैं यह कहना चाहती हूँ कि अपने निजि स्वार्थों के लिए की गई प्रार्थना प्रार्थना नहीं है। यह तो भगवान से मांगी गई भीख है। खैर! उसके दरबार में तो ज्ञानी और भक्त के सिवाय, सब भिखारी ही आते हैं। क्योंकि ज्ञानी आत्मसंतुष्ट होता है और भक्त समर्पण भाव से कहता है कि हे प्रभु! मेरा सबकुछ मेरे स्वयं के साथ तेरी शरण में है, तू अंतरयामी है।

शैतान के दिल को भी जानता है तो क्या भक्त के हृदय को नहीं जानता होगा ? मैं जो समर्पित हूँ तो फिर मुझे मेरी क्या चिंता ?

प्यारे साधको !

मुझे बात प्रार्थना ध्यान की करनी है। इसलिए सबकुछ कहना पड़ा। मैं उसे ही प्रार्थना कहती हूँ जो आपके नेक दिल से पूरी समष्टि के प्रति प्रेम के साथ उठे। जैसे सूफी संत पूरी कायनात के अमन और चैन के लिए अपने हाथ दुआ के लिए उठाते हैं। उपनिषद के ऋषि पूरे विश्व की शांति के लिए प्रार्थना करते हैं। ऐसी प्रार्थना के मूल में प्रेम होता है। आज इसी संदर्भ में मेरी लिखी हुई कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

मुझ साधना आराधना और अर्चना बस प्रेम है।

मुझ प्रार्थना, उपासना, अभ्यर्थना बस प्रेम है।

किसको भजूं किसको स्मरू, किसको चढ़ाऊं फूल मैं।

किसको पूजूं किसको त्यजूं, मेरी पूजा तो प्रेम है।

सर्वात्मने नमः मंत्र मेरा, मैं मैं करी मैं क्या करूँ।

यहाँ पिघली ममता अहंता, झरना बहा वह प्रेम है।

ना खुद से ना अन्य से, ना एक से न अनेक से।

आकाश से अवनितलक, कण कण तलक ये प्रेम है।

ना एषणा कोई बची, ना कोई आकांक्षा रही।

निर्मूल सभी आशा अपेक्षा प्रेम खातिर प्रेम है।

ना दुःख से ना स्वार्थ से, हो मोहिनी परमार्थ से।

ना स्थूल से पर सूक्ष्म से, तो यथार्थ तेरा प्रेम है।

दोस्तो, प्रार्थना की रीति अनूठी है। मैं यह नहीं कह रही हूँ कि अपने लिए नहीं सिर्फ औरों के लिए ही प्रार्थना करो परंतु यह कह रही हूँ कि औरों के लिए प्रार्थना करते करते आपका दिल इतने सुकून से भर जाना चाहिए कि फिर आपके लिए अलग ईश्वर से कुछ मांगने की कोई आवश्यकता ही न रहे।

आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि दुःख में, पीड़ा में मनुष्य व्याकुल हो जाता है, विवश, लाचार और मजबूर हो जाता है। जब परिस्थितियाँ अपने काबू में नहीं होती तब क्या करें?

प्यारे साधको!

यह बात अलग है, यह स्थिति अलग है, यह स्वार्थ नहीं है। यहाँ भी अगर समझ सको तो समर्पण है। आप अगर अपने सारे प्रश्न उसकी चरणों में रखकर आशीर्वाद के लिए अपनी झोली फैलाओ तो इसमें कुछ गलत नहीं है। संतों ने कहा है कि हारे को हरि नाम। परंतु दोस्तो, ऐसी प्रार्थना भीतर की करुण अवस्था में से प्रगट होती है और अंतर की गहराई में से आती है। भीतर की गहराईयों में से उठती आवाज ईश्वर को भी जगा देती है। परंतु एक बात याद रहे कि जहाँ बात हारने की है वहाँ कुछ शरती नहीं होता। ऐसी प्रार्थना समर्पण भाव से बहती है, राजनैतिक नहीं होती। ऐसी प्रार्थना कुछ पाने के लिए नहीं होती। वह प्रार्थना केवल प्रार्थना होती है। वह एक विनती होती है। जिसका उपसंहार होता है – तेरी मरजी में मरजी हमारी। वहाँ माँगने वाले का हृदय कहता है कि मेरी मति असहाय हो गई है। मैं हर तरह से हारकर तेरी शरण में आया हूँ। मैं आपको कुछ बताऊँ यह तो आपको अपमान है क्योंकि आप तो अंतरयामी हैं। फिर भी मैं कुछ बता दूँ तो उसे मेरी मानवी कमजोरी समझकर क्षमा करना। कुछ

मांगना यह मेरी मूढता है, आप तो सर्वज्ञ हैं और कल्याणकारी हैं। मेरा हित किसमें है यह आप मुझसे भी अच्छी तरह से जानते हैं। हे प्रभु! जिसमें मेरा कल्याण हो ऐसा करना।

दिए फैंक कबके हैं हथियार मैंने

तू लड़ना जिताना या हार जाना

दोस्तो, ये समर्पण का सच्चा भाव है।

प्यारे साधको!

प्रार्थना तो प्रार्थना है। मैंने प्रार्थना या ईबादत के संदर्भ में कुछ पंक्तियां लिखी है जो मुझे यहाँ याद आ रही हैं –

ईबादत तो ईबादत है

ईबादत की अनोखी रीत

ये तस्बी पाठ पूजा से

कभी पूरी नहीं होती।

एक और जगह पर कुछ पंक्तियां लिखते हुए कहा है –

तस्बी या माला जब देखती हूँ

तो सीखती हूँ तुझमें मन का पिरोना

वकील तू मुअक्किल दावा दलील तू

जो जी चाहे वो फैसला तू सुनाना

ये दरबार तेरा तू ही मेरा काज़ी

मुकद्दमा मेरा जल्दी चलाना

प्यारे साधको!

ये प्रार्थना का असल रूप है। इसमें प्रार्थना की ऊंचाई है। स्वार्थी मनुष्य कभी प्रार्थना नहीं कर सकता। वह केवल मांगे कर सकता है।

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 25

दोस्तो, मैं कहती हूँ कि प्रार्थना को ध्यान बना दो। मेरा एक अनुभव है। मेरे जीवन में जब कभी नाजुक स्थितियाँ खड़ी हो जाती हैं जिसे संभालना हमारे हाथों में नहीं होता तब मैं विशेष समय निकालकर प्रार्थना में बैठती हूँ। परंतु हर वक्त मेरे साथ एक ही घटना घटती है। प्रार्थना की क्षणों में मैं ध्यान में चली जाती हूँ। उसके सामने क्या अरज़ी रखना है यह भूल ही जाती हूँ और गहन मौन उतर आता है। मन निर्विचार होजाता है, बुद्धि बौखला जाती है। कभी कभी मंदिर में जाना भी हुआ है। मंदिर में जाने से पहले कभी कभी बुद्धि कुछ योजनाएं करके रखती है कि प्रभु को कुछ खास विषयों के बारे में प्रार्थना करनी है परंतु वहाँ पहुंचते ही मैं अदृश्य हो जाती हूँ। फिर कौन करे प्रार्थना ?

ऐसा एक बार नहीं परंतु अनेक बार हुआ है। तब मैं कह सकती हूँ कि प्रार्थना जब ध्यान बन जाता है तब वह अंतरयामी बिना बताए, बिना बोले, बिना कुछ मांगे सबकुछ समझ लेता है और अनसोचे हकारात्मक परिणाम आने लगते हैं।

प्रार्थना करते वक्त, सवाली और दाता (माँगने वाला और देने वाला) दोनों में अगर जुदाई रही तो प्रार्थना दुन्यवी रह जाती है और अगर बंदा दाता में खो जाता है तो प्रार्थना निःशब्द में समाकर भी फलदायी बन जाती है। ऐसी प्रार्थना दिव्य होती है, ऐसी प्रार्थना ध्यान बन जाती है।

एक बार एक फकीर को उसकी पत्नी ने कहा कि आप अपने अल्लाह से कुछ तो माँगिए। हमारे दो बच्चो सहित पूरा परिवार बहुत गरीबी में से गुज़र रहा है। आपके अल्लाह तो बड़े दयालू हैं। फकीर ने क्या माँगा पता है? उसने आसमान के नीचे बैठकर बोल दिया कि या अल्लाह मेरी बीवी और बच्चों को तेरे पास बुला ले क्योंकि आखिर तो

सारा जहाँ तेरी औलाद ही तो है। इसका अर्थ ऐसा मत करना कि फकीर निर्मम था। अर्थ यह करना है कि फकीरों की प्रार्थना अजीबोगरीब होती है उसे समझना थोड़ा कठिन होता है और उनका समर्पण बेमिसाल होता है।

प्यारे साधको!

मैं एक बार फिर से कहती हूँ कि आपकी प्रार्थना को ध्यान बना लो। ध्यान में प्रार्थी और परमात्मा भिन्न नहीं रहेंगे। आप शुद्ध भाव से एकांत में प्रार्थना करने के इरादे से भले बैठे हो परंतु इतने शांत हो जाओ कि प्रार्थना स्फुरे उसके पहले आप उसमें खो जाओ। भाव जगत को इतना प्रवाहित हो जाने दो कि आपको बोलना न पड़े। कुछ मांगना न पड़े। आपकी रोमांच दशा, भावदशा, अश्रु आदि में से प्रार्थना प्रगट होने लगेगी। यह अवस्था शाब्दिक प्रार्थना से अनेक गुनी उत्तम है। दोस्तो, यह अवस्था ही ध्यानावस्था है। अगर ऐसी अवस्था को आप प्राप्त कर लो तो वह ईश्वर की ओर से सबसे बड़ा उपहार समझना।





धरणा - 83

ईशावास्य उपनिषद् शांतिमंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 83

ईशावास्य उपनिषद् कहहिं, सदा सदा ही पूर्ण ही बचहीं।
पूर्ण तत्व के ध्यान से भाई, अनुपम शांति अनुभव लेहीं॥

ध्यान विधि - 83

वह पूर्ण परमात्मा समग्र
विश्व में सदाकाल विराजित
है और सदा पूर्ण ही रहते
हैं - ऐसा भाव कहते हुए
पूर्णत्व को प्राप्त कर लो ।



ई

शावाख्य कहता है कि यह और वह सबकुछ पूर्ण है। दोस्तो, यह एक परितृप्तिवाद है। आपने आशावाद और निराशावाद तो सुना होगा परंतु मैं आज आपको एक नया शब्द देती हूँ, परितृप्तिवाद। ज्ञान में प्रवेश हो जाने के बात ज्ञानी इतना परितृप्त हो जाता है कि उसे कहीं भी कुछ भी अधूरापन महसूस नहीं होता। उसकी समझ इतनी विशाल हो जाती है कि उसको सबकुछ पूर्ण लगता है। दोस्तो, यहाँ न ब्रह्म की स्तुति है न ही कर्म जगत की उपेक्षा। कर्म जगत की उपेक्षा करना तो निंदा हो जाएगी क्योंकि उस परब्रह्म की लीला के कारण तो इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति का जन्म हुआ। और जीव ने कर्म का प्रारंभ किया। इसका अर्थ यह हुआ कि वह परब्रह्म, आप और आपका कार्य सबकुछ ब्रह्मरूप ही है। शायद, महाप्रलय भी हो जाए और कर्म ब्रह्म की समाप्ति हो जाए तो भी जो ग्रहण करने योग्य पूर्णता है वह पूर्ण ब्रह्म में समा जाती है। फिर भी परमपूर्ण तो अशेष ही रहता है। क्योंकि वह कभी अपूर्ण था नहीं, है नहीं, होगा नहीं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

प्यारे साधको!

सबसे पहले अर्थ को समझिए। फिर संकल्प करके ध्यान की सीमा तक पहुँचिए।

ॐ अर्थात् वह परब्रह्म जो पूर्ण है और यह अर्थात् जो आप कर रहे हैं (कार्य ब्रह्म)। वह भी पूर्ण है। क्योंकि पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति हुई है। तथा (प्रलयकाल में) पूर्ण (कार्यब्रह्म) पूर्णत्व लेकर (अपने में लीन करके) पूर्ण (परब्रह्म) ही शेष रहता है। त्रिविध ताप की शांति हो।

प्यारे साधको!

यह एक सुंदर और अतुल्य वर्णानुप्रास युक्त आध्यात्मिक मुक्तक है। एक ही श्लोक सनातन सत्य और चिंतन को कितने सुंदर ढंग से प्रस्तुत करता है! यहाँ ऋषि का संतोष भाव, निर्भिकता और ज्ञानावस्था प्रगट होती है।

ईशावास्य कहता है कि यह और वह सबकुछ पूर्ण है। दोस्तो, यह एक परितृप्तिवाद है। आपने आशावाद और निराशावाद तो सुना होगा परंतु मैं आज आपको एक नया शब्द देती हूँ, परितृप्तिवाद। ज्ञान में प्रवेश हो जाने के बात ज्ञानी इतना परितृप्त हो जाता है कि उसे कहीं भी कुछ भी अधूरापन महसूस नहीं होता। उसकी समझ इतनी विशाल हो जाती है कि उसको सबकुछ पूर्ण लगता है। दोस्तो, यहाँ न ब्रह्म की स्तुति है न ही कर्म जगत की उपेक्षा। कर्म जगत की उपेक्षा करना तो निंदा हो जाएगी क्योंकि उस परब्रह्म की लीला के कारण तो इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति का जन्म हुआ। और जीव ने कर्म का प्रारंभ किया। इसका अर्थ यह हुआ कि वह परब्रह्म, आप और आपका कार्य सबकुछ ब्रह्मरूप ही है। शायद, महाप्रलय भी हो जाए और कर्म ब्रह्म की समाप्ति हो जाए तो भी जो ग्रहण करने योग्य पूर्णता है वह पूर्ण ब्रह्म में समा जाती है। फिर भी परमपूर्ण तो अशेष ही रहता है। क्योंकि वह कभी अपूर्ण था नहीं, है नहीं, होगा नहीं।

दोस्तो, यह एक विराट् चिंतन का परिणाम है। महान भाव है। एक विषद समझ है। एक विशेष दृष्टि है। सामान्य जन छोटी छोटी बातों में असंतुष्ट रह जाते हैं। तो पूर्णत्व का दर्शन कैसे समझेगा? परंतु उपनिषद् का ऋषि चाहता है कि आप निम्न कक्षा में से ऊपर उठ जाओ। सत्य के निकट बैठना सीखो।

किसी भी विषय या वस्तु को समझने के लिए उसका सानिध्य प्राप्त करना बहुत जरूरी है। भारत के मनीषि कहते हैं कि आप सत्य स्वरूप ब्रह्म के निकट बैठो। यहाँ बैठने का अर्थ क्रियात्मक रूप में बैठना नहीं है। परंतु आंतरिक निकटता और स्थिरता के संदर्भ में है। जरूरी नहीं

है कि आदमी जहाँ बैठा है वहाँ ही उसका चित्त हो। परंतु यहाँ समग्र चेतना आपको उस सत्य को देनी है।

आप जिस तरह अपने प्रेमी के पास बैठते हैं तब संपूर्ण रूप से उसके पास ही मौजूद होते हो। प्रिय पात्र में आपकी संपूर्ण तल्लीनता होती है। इसी तरह आपको सत्य ब्रह्म के निकट बैठना है। उपनिषद् का यही अर्थ है। भारत के मनीषियों का यह अनुभवित सत्य है। आपको उस ब्रह्म के निकट समग्रता के साथ, स्वीकार भाव के साथ और एकाग्रता के साथ बैठना है। जब आप ऐसे बैठना सीखेंगे तब वह मात्र बैठना नहीं रहेगा परंतु एक उत्तम कोटि की साधना बन जाएगी, उपासना बन जाएगी अंत में ध्यान बन जाएगा। क्योंकि आप उसमें विलीन हो गए होंगे।

प्यारे साधको!

आपको थोड़ा अजीब लगेगा परंतु मैं कहूंगी कि ज़रूरी नहीं है कि आप उपनिषद् मंत्रों को रट लें। आध्यात्मिक बातों के लिए मेरा नजरिया थोड़ा अलग है। तथाकथित धार्मिक धार्मिक मनुष्य को शायद मेरी बात हजम न भी हो परंतु समझदारों के लिए मेरी बातें उपयोगी सिद्ध होंगी। उपनिषद् के शांति मंत्र अगर नित्य पाठ से कंठस्थ हो जाएं तो बहुत अच्छा परंतु ऐसा न हो कि संस्कृत भाषा की क्लिष्टता आपके आध्यात्मिक विकास में और ध्यान में बाधा बन जाए। मैं कहती हूँ कि अर्थ को समझ लीजिए। केवल शब्दों को नहीं उसके भाव को समझ लीजिए। प्रार्थना और ध्यान में केवल भाव ही केन्द्र में हैं। भाव तो ध्यान का प्राण हैं। याद रहे, अर्थ को भी रटना नहीं है। कण्ठस्थ करने में मत पड़ना। भाव को हृदयस्थ कर लेना। ताकि वह स्टीरिओटाइप न बन जाए। हमें तो उसमें प्राण फूंक देना है, उसमें डूब जाना है। तभी वह ध्यान बन जाएगा।

दोस्तो, ध्यान का फल क्या है? ध्यान का फल है शांति। उपनिषद्कार ने कुछ मंत्रों को शांति मंत्र नाम देकर उस मंत्र के अंत में तीन बार ॐ शांतिः, शांतिः, शांतिः कहा है। इसका अर्थ है – इस मंत्र पर ध्यान करने का परिणाम मात्र शांति है।

प्यारे साधको!

कोई पूछे कि ध्यान का फल क्या है? तो मैं कहूँगी कि त्रिविध ताप की शांति और ध्यान का उद्देश्य क्या है? तो भी कहूँगी कि त्रिविध ताप की शांति। आदि दैहिक, आदि दैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के तापों से जब आप मुक्त हो जाओ। तभी आपका ध्यान में सही प्रवेश हुआ ऐसा जानो।

दोस्तो! इसका अर्थ ऐसा नहीं करना कि ताप नहीं रहेंगे। प्रश्न नहीं रहेंगे। दुःख नहीं रहेंगे। परंतु सामान्य मनुष्य की तुलना में ध्यानी को त्रिविध ताप कम पीड़ित कर पाएंगे। जब आप त्रिविध तापों से मुक्ति पाओ तभी आपका ध्यान सार्थक होता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि अगर पूरा विश्व ध्यान करेगा तो एक शांत और सजग विश्व का निर्माण होगा। जिससे मनुष्य ताप मुक्ति का अनुभव करेगा।

तो अब इस पूर्णत्व के चिंतन को समझकर पूर्ण की आराधना में ध्यानस्थ होकर पूर्णत्व में प्रवेश कर लो। निरंतर करते रहो पूर्णता का भाव।

तीव्र भाव करो कि आप पूर्ण हो, आपका सर्जक पूर्ण है, आपका कार्य पूर्ण है, कुछ भी अधूरा नहीं, अपूर्ण नहीं। दोस्तो! पूर्ण भाव का सदैव ध्यान करते करते आप एक परितृप्त अवस्था को प्राप्त हो जाएंगे। तब आपके लिए केवल आनंद और शांति बचेंगे, वे भी पूर्ण हैं।

धरणा - 84

तैत्तरेय उपनिषद् शांतिमंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 84

तैत्तरेय ने मैत्री सराहा, अति उत्तम कल्याणमय गावा।
प्रत्यक्ष अरु अप्रत्यक्ष प्रति करहुं, मैत्री भाव ध्यान धरि तरहुं॥

ध्यान विधि - 84

समग्र ब्रह्मांड के प्रत्यक्ष
और अप्रत्यक्ष आत्माओं
से मैत्री भाव विकसित
करते हुए ध्यान के द्वारा
विश्वमित्र बनकर महाशांति
को उपलब्ध हो जाओ ।



उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि सम्राटों के सम्राट से जब मैत्री चाहते हो तो मैत्री प्रस्ताव झुककर रखा जाता है अकड़कर नहीं। देवों को, महात्माओं को और परमात्मा को झुककर जीता जाता है। उनसे दोस्ती का हाथ फैलाने से पहले नमस्कार अनिवार्य है। नमस्कार से आशीर्वाद बरसेंगे। और उनकी प्रसन्नता से मनचाहा परिणाम भी, आशीर्वाद भी, कल्याण भी।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः ।
शं नो भवत्वयमा ।
शं न इन्द्रो ब्रिहस्पतिः ।
शं नो विष्णुरुक्रमः ।
नमो ब्रह्मणे । मनस्ते वायो ।
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षम् ब्रह्म वदिष्यामि ।
ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि ।
तन्मामवतु ।
तद्वक्तारमवतु ।
अवतु माम् ।
अवतु वक्तारम् ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अर्थ : ॐ अर्थात् वह परब्रह्म हमारा मित्र बने और हमारा कल्याण करे ।
वरुण भी हमारा कल्याण करे । अर्यमा अर्थात् सूर्य भी हमारा कल्याण

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 41

करे, इन्द्र और ब्रह्मस्पति भी हमारा कल्याण करे। जिसकी अपार क्षमता है ऐसा विष्णु भी हमारा कल्याण करे। हम ब्रह्मा को और वायु को नमस्कार करते हैं। हे वायु! आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, आप दृश्यमान ब्रह्म हो। मैं सत्य बोलूँ सत्य बोलूँ, वह सत्य मेरी रक्षा करे, वह सत्य गुरु की रक्षा करे, वह मेरी अर्थात् प्रार्थना करने वाले की रक्षा करे और गुरु की रक्षा करे। ॐ त्रिविध ताप की शांति हो।

प्यारे साधको!

कितना प्यारा मंत्र है। परब्रह्म अगर कण कण में है, यह सृष्टि परब्रह्म की लीला है अर्थात् ब्रह्म जगत से भिन्न नहीं है तो उपनिषद् का ऋषि चाहता है कि सृष्टि के सभी लोग उससे मैत्री भाव क्यों न रखें? उससे बड़ा और समर्थ, प्रेमपूर्ण और कल्याणकारी मित्र और कौन हो सकता है। अगर आप नकारात्मक स्वभाव के आदमी के प्रति भी मैत्री का भाव करेंगे तो वह आपका मित्र हो जाता है। तो ब्रह्म तो करुणावान है। वह एक वास्तविक मित्र है। परंतु परिणामों का आधार आपके भाव पर निर्भर करता है। मनोभाव और संकल्प शक्ति परिणाम को बदल देते हैं।

मैं कहती हूँ कि नकार में जीने वालों से दूर रहना। आदमी नकारात्मक है या हकारात्मक उसका प्रमाण क्या है? प्रमाण है उसके नेत्र, उसका व्यवहार, उसकी वाणी। नकारात्मक मनुष्य के वाणी-वर्तन एक दूसरे का साथ नहीं देता। वह अपने नकारात्मकता छिपाने का कितना भी प्रयास करे फिर भी उसके व्यवहार में उसकी नेगेटिविटी प्रगट हो ही जाएगी।

कभी कभी व्यवहार में नकारात्मकता नहीं दिखती है क्योंकि व्यवहार तो एक बाहरी क्रिया है। परंतु भीतर से मनुष्य नकारात्मक हो

सकता है। व्यवहार और वाणी की नकारात्मकता मनुष्य की आंतरिक स्थिति का प्रतिबिंब है।

उपनिषद् के ऋषि कितने हकारात्मक होंगे? जरा सोचो। वे अंतरिक्ष के देवों से मैत्री चाहते हैं। वे प्रगट ब्रह्म और अप्रगट ब्रह्म दोनों से मैत्री चाहते हैं। एक अर्थ में पूरे अस्तित्व से मैत्री चाहते हैं। यह एक प्रेमपूर्ण, समझपूर्ण और बड़ी उदार सोच है।

मेरी दृष्टि से सूर्य, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, इन्द्र, ब्रह्मस्पति और विष्णु आदि उस परब्रह्म के प्रतिनिधि हैं जो अखिल विश्व को कुछ न कुछ देते हैं। सृष्टि के अस्तित्व का आधार है। अपार शक्तिमान है। उपनिषद् के ऋषि उन सबको नमस्कार करके, उससे मैत्री करके अपना कल्याण चाहता है। यह एक वैश्विक प्रेम है। सच्चा प्रेम हमेशा झुकना जानता है। वह झुकना सिखाता है। झुककर कुछ सीखता है।

उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि सम्राटों के सम्राट से जब मैत्री चाहते हो तो मैत्री प्रस्ताव झुककर रखा जाता है अकड़कर नहीं। देवों को, महात्माओं को और परमात्मा को झुककर जीता जाता है। उनसे दोस्ती का हाथ फैलाने से पहले नमस्कार अनिवार्य है। नमस्कार से आशीर्वाद बरसेंगे। और उनकी प्रसन्नता से मनचाहा परिणाम भी, आशीर्वाद भी, कल्याण भी।

शिव पुराण में एक प्यारी कथा आती है। वह कथा कुबेर की तपस्या की है। घोर तप और कठोर साधना से कुबेर शिव को प्राप्त करता है। फिर शिव प्रसन्न होकर जब वरदान मांगने को कहते हैं तब वरदान में शिव की मैत्री चाहता है। शिव प्रस्ताव मान्य रखते हैं और प्रेम के वश

होकर कुबेर की नगरी अलकापुरी के समीप निवास करते हैं। ताकि दोनों की निकटता बनी रहे।

दोस्तो, मैत्री में निकटता बहुत जरूरी है और मानसिक निकटता तो अनिवार्य है। मानसिक फासला दोस्ती को खत्म कर देता है।

प्यारे साधको!

वेद का ऋषि प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार के देवों से निकटता चाहता है ताकि आधिदैविक ताप से मुक्त रह सके। वैसे तो देव का अर्थ होता है भाग्य। परंतु एक अर्थ में दैवी प्रकोप से विश्व मुक्त रहे ऐसा गर्भित भाव स्फुरित होता है। आज का मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि की कथाएं तो बहुत सुनता है परंतु विश्वकल्याण के लिए उनमें से मानसिक मैत्री का संकल्प और सदंतर भाव करके उसको ध्यान की ऊंचाई तक ले जाने वाले कितने!

दोस्तो, नेक दिल इंसान की बंदगी असर लाती है। मैंने कहीं लिखा है कि

“मोहिनी” बंदगी में असर हो तो

खुदा के साथ आदमी भी खुदा हो जाए

इन्द्र, वरुण, सूर्य आदि की प्रार्थना करके उससे मैत्री का हाथ बढ़ाने के संकल्प में कोई साधारण प्रार्थना नहीं है परंतु यह एक ऐसी प्रार्थना है कि जिससे भगवान के साथ भक्त और ईश्वर के साथ इंसान भी ऊपर उठ रहा है। दोस्तो, विश्व कल्याण का भाव करते करते आपमें इशत्व उतरने लगेगा और पूरे ब्रह्मांड के देवों से मैत्री करके ईश्वर के साथ आप तदाकार हो जाओगे। आपका हृदय भगवदता से पूर्ण हो जाएगा। मैं कहती हूँ कि जो भगवदता से पूर्ण है वही है भगवान। वास्तव में आप

उसका ही अंश हो। उससे अलग हो ही नहीं। परिचय तो पुराना है। उपनिषद् का शांति मंत्र तो आपको केवल सत्य का पुनःस्मरण कराता है। रिश्ते को ताज़ा कराता है। अध्यात्म की मुहर से रिश्ता पक्का हो जाता है। मनुष्य ने खामखा खुद को दीन-हीन, अधम-पापी समझ रखा है।

दोस्तो, स्मरण रखें कि आप पूरे ब्रह्मांड के मित्र हो। अजात शत्रु भाव को जन्म देने के लिए यही उत्तम तरीका है। असत्य, अहिंसा, मेरा-तेरा और झूठ, चोरी और अन्य पाप उन सबसे विश्व मैत्री के संकल्प के द्वारा आप स्वतः मुक्त हो जाएंगे। उपनिषद् ने मनुष्य को कितनी ऊंची धारणा दे दी है! अगर वह देवों से मैत्री करने योग्य नहीं होता तो ऋषि यह बात करता ही नहीं, परंतु ऋषि तो कहता है कि देवों को मैत्री का इजन दो। उनका आह्वान करो विश्व के कल्याण के लिए।

बात समझने जैसी है। यहाँ धारणा में अदृश्य देव से भी मैत्री करनी है तो फिर दृश्य जगत में किसी भी के साथ वैर का विचार भी कैसे हो पाएगा? तैत्तरेय उपनिषद् के शांति मंत्र में सर्व मित्र भाव का राज छिपा है। वहाँ कोई भारी भरखम उपदेश नहीं है। वह मनुष्य को एक सीधी सीधी उत्तम धारणा दे देते हैं। जिससे प्रेम, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह जैसे गुण स्वतः पनपते हैं। उपनिषद् मंत्रों में कई बातें बहुवचन में की गई हैं। कई बार आता है कि “हमारा कल्याण करें, हमारा कल्याण करें।” यहाँ दो अर्थ अभिप्रेत हैं। एक अर्थ में गुरु शिष्य दोनों का कल्याण करें और दूसरे अर्थ में सबका कल्याण करें वहीं तीसरे अर्थ में समझें तो यह सब एक गुरु ही सिखा रहा है। एक गुरु के एक से ज्यादा भी शिष्य हो सकते हैं। हमारे से तात्पर्य है – हम सबका कल्याण करें।

प्यारे साधको!

वेद काल में गुरु शिष्य परंपरा थी। गुरु वैश्विक बातें सिखाते थे। तब न तो विद्या का व्यापारीकरण था, न तो मार्केटिंग की स्वार्थी मोनोपॉलियाँ और विचित्र नीतिओं की किताबों की कल्पना भी नहीं थी। तब ध्यान था, पालिसियाँ नहीं थी। नीति थी परंतु कूटनीतियाँ और कुनीतियाँ नहीं थीं। वेदकालीन मनुष्य बहुत निर्दोष और उदार था, समझदार था, परोपकारी था, उसका हृदय स्वीकारभाव से पूर्ण था। आज के कोन्वेन्ट कल्चर में ऐसे भाव खत्म हो रहे हैं। तो फिर आध्यात्मिक परिणाम कहाँ से मिलेंगे ?

प्यारे साधको!

उपनिषद् का शांति मंत्र एक प्रकार का ध्यान भी है, प्रतिबद्धता भी है और संकल्प भी। जहाँ गुरु शिष्य सब विश्व कल्याण के भाव के लिए प्रमाणिकता से प्रतिबद्धित होते हैं। आज का मनुष्य खुद के साथ भी प्रतिबद्ध नहीं है। सुबह किया हुआ कमिटमेंट शाम को तोड़ देता है और शाम का सुबह में। वह एक चित्त नहीं रहा। उसके पल पल बदलते चित्त के कारण आज पहले से हजार गुना ज्यादा ध्यान की आवश्यकता है। केवल ध्यान ही उसको बे-ध्यानपन से और बेहोशी से लक्ष्यपूर्ण, सजग तथा आत्मप्रतिष्ठित बना सकता है।

उपनिषद् आपको कुदरत के निकटतम ले जाने का प्रयास करते हैं। वह मंदिरों की और मूर्तिपूजा की बात नहीं करते हैं। वह युग अलग था। वे कहते हैं कि हे सूर्य! हे वायु! आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, आप दृश्यमान ब्रह्म हो, आपकी जीवंत ऊर्जा का अनुभव प्रकाश और प्राण वायु के द्वारा आंख और श्वसन से पूरे ब्रह्मांड के जीव अनुभव कर रहे हैं – उस देव को

हम नमस्कार कर रहे हैं। समग्रता से किए हुए नमस्कार में मन, बुद्धि और अहंकार खो जाते हैं। तब ऐसा नमस्कार ध्यान बन जाता है।

प्यारे साधको!

एक दूसरी बात करें। ध्यान किसे कहेंगे? जिसके प्रति हम ध्यान देते हैं उसे कभी भूलते नहीं। दोस्तो, जो भूला न जाए, जिस सत्य का विस्मरण कभी न हो; वह है ध्यान। उपनिषद् सही अर्थ में ध्यान सिखा रहा है।

शांति मंत्र के अंत में प्रार्थना करने वाले संकल्प करते हैं कि हम सत्य बोले, सत्य बोले। एक ही बात का यहाँ दो बार पुनरावर्तन है। ऐसा क्यों? यहाँ साधक अपने संकल्प की दृढ़ता प्रकट करता है। ऐसे पुनरावर्तन से उसकी प्रतिबद्धता सिद्ध होती है। साथ साथ प्रार्थना में श्रद्धा भी प्रगट होती है। मंत्र के अंत में कहते हैं कि सत्य हमारी रक्षा करे, गुरु की रक्षा करे, शिष्य की रक्षा करे, सबकी रक्षा करे, प्रार्थना करने वाले की रक्षा करे।

दोस्तो, श्रद्धा के बिना अपना रक्षाभार कोई किसीको नहीं सौंप सकता।

मंत्र की अंतिम दो बातें बहुत प्यारी हैं। यह बात उपनिषद् को हमारा वर्तमान बना देती हैं। उपनिषद् भले पुरातन है, भले वेदकाल में अस्तित्व में आया परंतु उसकी बातें शाश्वत हैं। एक तो सत्य मेरी रक्षा करे, यह बात प्यारी है।

प्यारे साधको!

उपनिषद्कार ने ऐसा क्यों कहा? दोस्तो, सत्य में बहुत ताकात है। जो सत्य बोलता है और सत्य करता है वह हमेशा निश्चिंत और निर्भय

रहता है। कहीं भी झूठा साबित नहीं होता। न कभी संकुचित होता है। असत्य बोलने वाले का दिमाग विशेष ऊर्जा खा जाता है। उसे दुनिया को उल्टा-सीधा पढ़ाने के लिए अपना दिमाग सतत लड़ाना पड़ता है ऐसा आदमी भीतर से खोखला हो जाता है। उसकी हौरा (आभामंडल) निस्तेज हो जाती है। वह भीतर से अ-सुख का अनुभव करता है। एक झूठ को छिपाने के लिए असंख्य झूठ बोलना उसका धर्म बन जाता है। उसका नजरिया साफ नहीं रहता। ऐसा आदमी पूरी दुनिया को अपने जैसा मानकर चलता है। उसकी आस्था का बल टूट जाता है क्योंकि ऐसे लोगों की कहीं आस्था ही नहीं होती। स्वार्थ के इर्द गिर्द जीने के कारण ऐसे लोग मानव रूप में पशु जैसे बन जाते हैं। प्रार्थना, स्नेह, सेवा, सहयोग, सहानुभूति जैसे शब्द उसके शब्दकोष में होते ही नहीं हैं। उसके जीवन के केन्द्र में अंधा स्वार्थ ही रहता है। ऐसे लोगों की हर बात हिसाब किताब के साथ होती है। वे बेचारे कैसे समझ पाएं उपनिषद् के इस महान संकल्प को? महान भाव को? और कैसे जी पाएंगे विश्व कल्याण से युक्त जीवन? दोस्तो, मनुष्य को ऐसे स्वार्थांधता के दल दल से बचाने के लिए ही शायद उपनिषदकार ने शांति मंत्रों की धारणा दी। जिससे वह ध्यानस्थ होकर एक ऊमदा जीवन को प्राप्त करे। ध्यानस्थ होने का अर्थ यहाँ स्थिर होना ऐसा करेंगे तो भी चलेगा।

प्यारे साधको!

मैं बात यह कह रही थी कि सत्य रक्षा करता है। सत्य निर्भयता देता है। निर्भयता लंबी आयु और शांति तथा अंतर का सुख देती है। ऋषि कहते हैं कि सत्य हमारी रक्षा करे।

दोस्तो, आपको सनातन सत्य में जीने के लिए संकल्पबद्ध होना है। पूरे ब्रह्मांड से मैत्री का हाथ फैलाना है, केवल कल्पना में नहीं परंतु हृदय के सच्चे भाव से। इस भाव को ही यहाँ सत्य कहा है। जल, सूर्य, और वायु को प्रत्यक्ष देव मानकर कुदरत की प्रेमपूर्ण उपासना करके उससे मैत्री करनी है। एक अर्थ में इसमें पर्यावरण की रक्षा करने के लिए आप सहज ही कटिबद्ध हो जाते हो।

दोस्तो, जल, वायु और प्रकाश जैसे कुदरती स्रोतों का उपयोग करके उसे धन्यवाद दो। परंतु उसका दुरुपयोग न हो इसके लिए सजग रहो क्योंकि आप उनके मित्र हो। याद रहे! शत्रु विनाश करता है, मित्र रक्षा करता है। यहाँ परस्पर रक्षा का भाव है। यह संकल्प सत्यभाव से करना है। वह सत्य भाव ही आपकी रक्षा करेगा।

दोस्तो, आज ग्लोबल वॉर्मिंग का प्रश्न पूरी मनुष्यता के सामने एक प्राणप्रश्न बनकर खड़ा है। पूरी दुनियाँ भयभीत है। क्यों? क्योंकि पहले अज्ञानवश या स्वार्थवश मनुष्य ने कुदरत से शत्रुता की। और ब्रह्मांड के माहौल को बिगाड़ दिया। कुदरत के संतुलन को बिगाड़ दिया। अब बाज़ी हाथ में से निकल चुकी है। खैर! जब जागे तब भोर। अब तो लौट आओ उपनिषद् के द्वारा दी हुई धारणाओं की ओर। अब तो ध्यान दो सत्य की ओर। और ध्यान से प्रवेश करो सत्य में।

दोस्तो, शांति मंत्र के अंत में एक दूसरी बात प्यारी है – वह परब्रह्म इस प्रार्थना करने वाले वक्ता की रक्षा करे। इस वचन से उपनिषद् अतीत और वर्तमान का फासला मिटा देता है। इस वजह से उपनिषद् कोई पुरातन शास्त्र न रहकर एक वर्तमान बन जाता है। जब भी, जो भी

इन वचनों को पढ़ेगा, इनके अनुसार जीएगा, इनपर ध्यान करेगा, उसकी रक्षा होगी।

प्यारे साधको!

सारी बात के सार को समझकर अब उतरो एक विषद भाव में; उस भाव को उस हद तक गहन बनाओ कि वह ध्यान बन जाए। इस ध्यान के द्वारा पूरे ब्रह्मांड के मित्र बनो, सर्व मित्र बनो, विश्व मित्र बनो; जिससे आपके त्रिविध तापों की शांति हो।



धरणा - 85

कठोपनिषद् शांतिमंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 85

तैत्तरेय कठ माण्डूक्य गावा, श्वेताशतर उपनिषद् सराहा।
सब पुरुषार्थ करे, सब भोगे, सब तेजस्वी बने, सब जागे।
दिव्य भाव यह ध्यान जब बनहिं, तब ब्रह्मांड में शांति प्रसरहिं।।

ध्यान विधि - 85

साथ साथ पुरुषार्थ करना
और जाग्रति के साथ उन
उपलब्धियों का साथ साथ
सम्यक उपयोग करने के
भाव से दिव्यता को प्राप्त
हो जाओ ।



दो

स्तो, उपनिषद् की कुछ बातें हमें खराब रूप से समझ लेनी हैं। वे बातें संघभाव और प्रत्येक के प्रति शुभेच्छा का संकेत देती हैं। पूर्व और पश्चिम दोनों के मनीषि एक बात का स्वीकार करते हैं कि मनुष्य अकेला नहीं जी सकता। ज्ञान के सर्वोत्तम शिखर पर जो पहुँच गए हैं उनकी बात अलग है परंतु ऐसे लोगों ने भी संघ की शरण में जाने की बात की है। जैसे कि बुद्ध ने कहा कि संघं शरणं गच्छामि। परंतु जो मनुष्य जीवन की साधारण संस्कार यात्रा है वहाँ तो दो की अनिवार्यता है। दो से ही सृष्टि है, दो से ही संवाद है, दो से ही अद्वैत में प्रवेश है, जो द्वैत नहीं होता तो अद्वैत की संकल्पना ही नहीं जन्म लेती। और दो के सह अस्तित्व के बिना सृष्टि कार्य भी असंभव है।

ॐ सह नाववतु।
सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

अर्थ :- वह परमात्मा हम दोनों की साथ साथ रक्षा करे। हम दोनों का साथ साथ पालन करे। हम साथ साथ विद्या संबंधी सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनों विद्या के द्वारा तेजस्वी हों। हम द्वेष न करें। त्रिविध ताप की शांति हो।

प्यारे साधको!

यह एक बहुत प्रसिद्ध शांति मंत्र है। सामान्य रूप से लोग इसे भोजन के वक्त बोलने का एक मंत्र मानते हैं। परंपरागत संस्कारों के कारण रटा हुआ यह मंत्र भोजन सभा में एक औपचारिकता निभाने के लिए बोल लेते हैं। पता नहीं कितने लोग इस मंत्र के अर्थ या मर्म को

समझते होंगे! परंतु यह मंत्र बोलकर भोजन लेने वालों को संस्कारी माना जाता है।

प्यारे साधको!

संस्कार और समझ में फर्क है। संस्कार बाहर से डाले जाते हैं। समझ भीतर से उद्भवित होती है। समझ खुद की कमाई है। कुछ संस्कार रक्त में भी प्राप्त होते हैं परंतु जन्मजात समझदार लोग बहुत कम मिलते हैं। समझ मनुष्य के अंतरजगत की उपज है। संस्कार ऊपर की परत है। कभी कभी ऊपर से थोपे हुए संस्कार आवरण भी बन सकते हैं। मनुष्य को जागने में बाधारूप भी बन सकते हैं।

एक बार, दो बार, दस बार, पचास बार, सो बार कुछ खास बातों के लिए बचपन से ही कुछ खास सूचनाएं दे दे कर समाज में शिष्ट दिखाने के लिए, एक सभ्यतापूर्ण मनुष्य दिखाने के लिए, कुछ अच्छी आदतें डालने के लिए बहुत टोर्चर किया जाता है। इसे लोग संस्कार का सिंचन कहते हैं परंतु मेरी दृष्टि से ये तथाकथित संस्कारिता है। आप ऐसे बन भी गए हैं।

कभी कभी ऐसी बातों का मजबूरन स्वीकार होने से मन भीतर से विरोध करता रहता है। क्योंकि वे बातें जबरदस्ती थोपी जाती हैं। जहाँ जबरदस्ती आती है वहाँ आदमी का मन विद्रोह करता है। वह विद्रोह खुलकर सामने न आए यह दूसरी बात है परंतु भीतर वह पनपता रहता है। ऐसी स्थिति में एकांत अथवा स्वतंत्रता मिलते ही संस्कार के नकाब को आदमी एक ही क्षण में उतार कर फेंक देता है और असली रूप में जीने का आनंद ले लेता है। वह असल रूप कुरूप भी हो सकता है सुरूप भी, परंतु जो होता है वह वास्तविक होता है।

मैं कहती हूँ कि वास्तविकता कैसी भी हो परंतु नकाब से तो अच्छी है क्योंकि नकाब आदमी को उसके असली चहरे के साथ जीने नहीं देता। धीरे धीरे आदमी एक बनावटी जीवन का स्वीकार कर लेता है। फिर बनावट में ही पूरा जीवन गुजर जाता है।

उपनिषद् आपको एक वास्तविक दृष्टि देते हैं, वास्तविक चिंतन देते हैं, वास्तविक जीवन जीना सिखाते हैं, इसलिए ही उसकी एक अलग पहचान है परंतु ज्यादातर लोगों का कहानियों में रस है सत्य में नहीं, दूसरों में रस है खुद में नहीं। यही कारण है कि पुराण और रामायण जितने प्रकाश में आए उतने उपनिषद् नहीं।

लोग कहते हैं कि उपनिषदों को समझना कठिन है। मैं कहती हूँ कि पूराण की लंबी वंशावलियाँ, कथाएं, पात्र और प्रमुख कथाओं के साथ अनेक गौण कथाओं को याद रखने से उपनिषद् का सीधा और स्पष्ट ज्ञान बहुत ही सरल है।

उपनिषद् किसी और की बात न करते हुए सीधा आप पर ही प्रकाश डालता है। अन्य धर्मग्रंथों में अन्य पात्रों पर ज्यादा ज़ोर दिया गया है। मनुष्य को दूसरों में रस लेने की आदत हो गई है। स्वयं के सत्यों से लुकाछुपी खेल रहा है। जन्म, मृत्यु, मिलन-विरह, और विजय-पराजय की रोचक कथाओं में आदमी खुद को थोड़ी देर के लिए भूल जाता है। कथाओं में वह धार्मिक मनोरंजन करता है; सत्संग नहीं। जबकि उपनिषद् में छोटे छोटे उदाहरणों के द्वारा सीधी बात हैं। उसके केन्द्र में मनुष्य जीवन की वास्तविकता है। अलंकारित भाषा और अतिशयोक्ति के स्थान पर उपनिषद् में आत्मतत्त्व केन्द्र में है। परिधि में उत्तम विचार और छोटी छोटी प्रेरक कथाएं हैं जिनका सीधा असर आपके जीवन पर पड़ता है। उपनिषद्

ऐतिहासिक कहानियों और पात्रों को उजागर नहीं करते परंतु सीधा सत्यों को उजागर करते हैं। यह प्रकाश कभी कभी इतना तेजपूर्ण होता है कि आदमी उसे झेल नहीं पाता। आज के मनुष्य में उसके प्रकाश को सहने की हिम्मत नहीं है। इसलिए वह स्वबचाव के लिए कहता है कि उपनिषद् कठिन है। क्योंकि उपनिषद् की छोटी छोटी कहानियाँ मनुष्य का मनोरंजन नहीं कराती परंतु उसमें बोध जगाती हैं।

दोस्तो, उपनिषद् के श्लोकों को खाने-पीने के समय बोलने की औपचारिकता तक मर्यादित मत रखो। कभी कभी तो मैंने भोजन सभा में देखा है कि कुछ लोग प्रतीक्षा करते हैं कि मंत्र कब पूरा हो और कब भोजन पर टूट पड़ें। इससे तो अच्छा है कि पहले खाना खा लो बाद में मंत्र बोलो। क्षुधावृत्ति शांत हो जाएगी और फिर फुरसत से सहनाववतु मंत्र को बोलेंगे तो कुछ जान पाएंगे, समझ पाएंगे।

उपनिषद् की सबसे अच्छी बात यह है कि उसके शांति मंत्र मनुष्य में समूह जीवन और सहजीवन का बोध जगाते हैं। शांति मंत्रों में ज्यादातर बहुवचन में ही बात हो रही है। केवल “मैं” नहीं परंतु “हम”। इसका अर्थ है दो अथवा दो से ज्यादा। दो मित्र, दो साथी, दो गुरु-शिष्य।

दोस्तो, उपनिषद् की कुछ बातें हमें खास रूप से समझ लेनी हैं। वे बातें संघभाव और प्रत्येक के प्रति शुभेच्छा का संकेत देती हैं। पूर्व और पश्चिम दोनों के मनीषि एक बात का स्वीकार करते हैं कि मनुष्य अकेला नहीं जी सकता। ज्ञान के सर्वोत्तम शिखर पर जो पहुंच गए हैं उनकी बात अलग है परंतु ऐसे लोगों ने भी संघ की शरण में जाने की बात की है। जैसे कि बुद्ध ने कहा कि संघं शरणं गच्छामि। परंतु जो मनुष्य जीवन की साधारण संसार यात्रा है वहाँ तो दो की अनिवार्यता है। दो से ही सृष्टि है,

दो से ही संवाद है, दो से ही अद्वैत में प्रवेश है, जो द्वैत नहीं होता तो अद्वैत की संकल्पना ही नहीं जन्म लेती। और दो के सह अस्तित्व के बिना सृष्टि कार्य भी असंभव है।

प्यारे साधको!

कठोपनिषद् का शांतिपाठ मंत्र बड़ा प्यारा है। मैं कहती हूँ कि पहले उसे ध्यान से समझिए फिर उस पर ध्यान कीजिए।

इन शांति मंत्रों में सबसे मझे की बात यह है कि परमात्मा को किसी एक विशेष नाम से नहीं पहचाना जाता है। ॐ से प्रारंभ करके उस परब्रह्म के प्रति संकेत किया है। उस ब्रह्म के साथ ही संवाद हो रहा है। उसे ही प्रार्थना हो रही है और उसपर ही ध्यान करना है।

मंत्र कहता है कि वह ईश्वर हम दोनों की साथ साथ रक्षा करे। हम दोनों का साथ साथ पालन करे। विद्या प्राप्ति का सामर्थ्य हम दोनों को साथ साथ प्राप्त हो। हम विद्या प्राप्ति से तेजस्वी हों और परस्पर द्वेष न करें। त्रिविध ताप की शांति हो।

इस मंत्र में आधिदैहिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों सिद्धियों का संकल्प एक साथ है। एक ही प्रार्थना में तीनों भाव हैं। परंतु आधिभौतिक और आधिदैविक सिद्धियों का अध्यात्म में विलीन होने का जो भाव है वह अद्भुत है।

मंत्र के प्रारंभ में कहते हैं कि हमारी रक्षा हो और पालन हो। जो सीधी बाहरी अस्तित्व संबंधी बात है। भौतिक बात है। फिर विद्या प्राप्ति और सामर्थ्य प्राप्ति की बात है। जिसे मैं आधिदैविक कहूँगी क्योंकि विद्या, लक्ष्मी भाग्य पर आधारित है, ऐसा सुज्ञ जनों का कहना है। फिर भी पुरुषार्थ से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है, ऐसा मैं मानती हूँ।

फिर कहते हैं कि विद्या प्राप्ति से हम तेजस्वी हों। इस कथन से अध्यात्म जगत का आरंभ होता है। तेजस्विता का संबंध सीधा अंतरजगत से है। दिव्य चेतना से है। विद्या ही मनुष्य को तेजस्वी बना सकती है। केवल पढ़ना लिखना यह विद्या नहीं है। सत्यज्ञान को जो उपलब्ध करा देती है वह है विद्या। जो कल्याणकारी है। बाकी अकारण बुद्धि प्रयोगों से तथाकथित पढ़े लिखे लोग चंट और निस्तेज लगते हैं।

अंत में कहते हैं कि हम परस्पर का द्वेष नहीं करें। यहाँ पूर्ण आंतरिक समझ की बात है। यह एक आध्यात्मिक ऊंचाई है। द्वेष तभी नहीं होता जब राग की गैरमौजूदगी हो।

दोस्तो, उपनिषदों का सार गीता है। गीता के दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में से एक गुण है रागद्वेष से मुक्ति। जहाँ राग द्वेष आता है, वहाँ समझ लेना कि मन की हाज़री है। जहाँ स्थितप्रज्ञ अवस्था शुरू होती है वहाँ से समझना कि साधक मन के पार चला गया है।

दोस्तो, इस मंत्र में मन के पार पहुंचने की प्रार्थना है। परंतु मैंने इस मंत्र के बारे में इतनी विषद सोच वाले लोग आज तक नहीं देखे हैं। केवल एक औपचारिकता के रूप में यह मंत्र बोला जाता देखा है। मंत्र का अंतिम चरण अद्भुत है। वहाँ मनुष्य अटक सकता है। कभी कभी कुछ लोग बहुत ऊपर पहुंचकर एकाद कमज़ोरी के कारण अचानक खाई में गिर जाता है। यह गिरना सूक्ष्म है, मानसिक है। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक अधःपतन है। ऐसे गिरने की आवाज नहीं सुनाई देती परंतु गिरने वाला अपने मन में जानता है कि मैं क्यों गिरा? कितना गिरा? मैं किसका द्वेष कर रहा हूँ?

दोस्तो, मैंने एक कविता में लिखा है—

जागने की बात नीदों में सुना किये।
 सुनने की बात अनसुनी करता रहा है क्यों? ११॥
 पाने के मामले में बहुत होशियार था।
 सब छोड़ने के वक्त तू घबरा रहा है क्यों? १२॥
 आतिश तो क्या धूआं भी कहीं दिखता नहीं।
 चर्चा तू खाकसारी की करता रहा है क्यों? १३॥
 याद उसको दिल से करता कभी नहीं।
 मतलब के वक्त नाम को चिल्ला रहा है क्यों? १४॥
 तू झूठ-मूठ रोज बुलाता रहा उसे।
 सचमुच की हाजरी से डरता रहा है क्यों? १५॥
 बातें तो गुल-गलिस्तां लगाने की कर रहा है।
 खुद खार बनके सबको चुभता रहा है क्यों? १६॥
 तू रोशनी की फिलसुफी दुनियां को दे रहा है!
 छोटा सा दिया देखकर जलता रहा है क्यों? १७॥
 अल्लाह की लाली के दोहे तो रट लिये।
 छोटी सी कलि देखकर मुरझा रहा है क्यों? १८॥
 हाँ, भीड़ भड़क्के का तू संत बन गया।
 शैतान तेरे दिल से मिटता नहीं है क्यों? १९॥
 बंदा बता, क्या इतना बेसहारा है?
 तस्बी पकड़के सुमिरन करता रहा है क्यों? २०॥
 पहचान बना ऐसी, कि पहचान ले सनम।
 तिलक लगा के ढोल पीटता रहा है क्यों? २१॥

भीतर से बन फकीर लिबास से नहीं।
 दाढ़ी-जटा को झेलकर फिरता रहा है क्यों? ॥१२॥
 क्या राम ने कहा है - “मैं रहीम से जुदा हूँ?”
 दंगा-फसाद बार बार करवा रहा है क्यों? ॥१३॥
 तेरी भूल हो रही है, तू न शाह बादशाह।
 अरमानों का गुलाम बनता रहा है क्यों? ॥१४॥
 तेरी हसरतें ज़ाहिर में नचवा रहीं तुझे।
 पैसों के लिए मुजरा करता रहा है क्यों? ॥१५॥
 ईमान और धरम की बातें तो खूब कीं।
 पर रोज़ नई साज़िशें करता रहा है क्यों? ॥१६॥
 औरों के हाथ थामने का वहम छोड़ दे।
 तू सोच खुद इतना लड़खड़ा रहा है क्यों? ॥१७॥
 तू हार जा, उसी के कदमों में बैठ जा।
 जीतने की बाज़ी बार बार पिटता रहा है क्यों? ॥१८॥
 बैठा है उसके नाम पे, तो ईज़्जत भी करना सीख।
 बेहोशी में बेईज़्जति करता रहा है क्यों? ॥१९॥
 बुढ़ा तू हो गया है कितने युगों से सोच?
 पर मज़हबी नादानियत बरतता रहा है क्यों? ॥२०॥
 रुक जा, अब तो जाग, थम जा जरा सा तू।
 मंज़िल के लिए नींद में चलता रहा है क्यों? ॥२१॥
 खामोश रहके दो पल, उन आहटों को सुन।
 बेकार की बातों को बकता रहा है क्यों? ॥२२॥

वुछ आग तो जगा ले, वुछ आग भी लगा।
 अफसाने एक से सदा लिखता रहा है क्यों?।२३॥
 हर सांस तेरे भीतर बहती नई नई।
 बातें पुरानी सर पे ढोता रहा है क्यों?।२४॥
 रुह की पुकार का गला घोंट रहा है!
 मरने के पहले तू यहाँ मरता रहा है क्यों?।२५॥
 पैगाम आ रहा है गैबी कहीं से सुन!
 अपने ही गाने रात दिन गाता रहा है क्यों?।२६॥
 औरों को पालने का भरम पालता हुआ।
 खुद की जड़ों से रोज़ उखड़ता रहा है क्यों?।२७॥
 हाँ, उसका पैसला सदा बरकरार है।
 तू तेरे पैसले को बदलता रहा है क्यों?।२८॥
 झुकना तो तेरा जहरीले सांप सा ही है।
 बरसों से फिर भी सजदे करता रहा है क्यों?।२९॥
 होशियार! तेरे भीतर कोहराम मच रहा है।
 और अमन के मुखौटे पहनता रहा है क्यों?।३०॥
 तेरी नसों में दुश्मन कई दौड़ रहे हैं।
 यारी के लिए हाथ बढ़ाता रहा है क्यों?।३१॥
 तू देख उसका जलवा, और आँख मूंद ले।
 दुनियां की चकाचौंध से अंजता रहा है क्यों?।३२॥
 मुमकिन है तो बिगड़ी बना ले, जनम जनम की।
 औरों के सितारों को दिखता रहा है क्यों?।३३॥

कागज के पूल सा तू, हँस रहा है देख!
 अंदर से गर्म आहें, भर रहा है क्यों?।३४॥

तू सर से पैर तक डूबा बेहोशी में।
 बातें रूहानी रोज़ करता रहा है क्यों?।३५॥

ये “मोहिनी” है मसला ज़रा संजिदा समझले।
 उड़ जा परिंदा पिंजरा पकड़ता रहा है क्यों?।३६॥

प्यारे साधको!

परमात्मा को प्रार्थो कि सबकुछ पाने के बाद राग-द्वेष से ऊपर
 उठकर आप अध्यात्मिक के दिव्य विश्व में प्रवेश करें। जब इस सत्य पर
 सतत ध्यान करेंगे तभी त्रिविध तापों की शांति प्राप्त होगी।



धरणा - 86

माण्डुक्योपनिषद् शांतिमंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 86

मण्डुक मण्डुक्य प्रश्न उपनिषदा, कहे शुभ दर्शन-श्रवण हो सदा।
सर्व देव कल्याण को करहिं, ध्यान धरि सुख शांति लहहिं॥

ध्यान विधि - 86

शुभ दशनि, श्रवण और
चिंतन के अभ्यास को
ध्यान की भूमिका तक
पहुँचा कर परम कल्याण
को प्राप्त कर लो ।



यहाँ उपनिषद् का ऋषि देवगण से प्रार्थता है। आज का मनुष्य देवों के जिक्र से हँस भी सकता है। वह पूछेगा कि कहाँ हैं देव? इसका एक ही कारण है कि वह प्रकृति (कुदरत) से दूर चला गया है। मैं कहती हूँ कि सूर्य, जल, वायु आदि प्रत्यक्ष देव हैं। अन्य देवों को हम भले नहीं देख सकते हैं परंतु ऋषियों ने जो प्रार्थना की है तो कुछ सत्य भी होगा। यहाँ कम से कम हम इतना अर्थ तो लगा सकते हैं कि प्रत्यक्ष और परोक्ष में विलसित दैवी शक्तियाँ हमें ऐसी सद्प्रेरणा दें कि हम कल्याणकारी बातों को ही सुनें।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः ।

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाग्ं सस्तनूभिः ।

व्यशेम देवहितम् यदायुः ।

अर्थ :- हे देवगण! हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, यज्ञकर्म में समर्थ होकर नेत्रों से शुभ दर्शन करें, तथा अपने स्थिर अंग और शरीर से स्तुति करने वाले देवताओं के लिए हितकर आयु का भोग करें। त्रिविध ताप की शांति हो।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः ।

स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ।

स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अर्थ :- महान कीर्तिमान इन्द्र हमारा कल्याण करे। परम ज्ञानवान और धनवान पूषा हमारा कल्याण करे। जो अनिष्टों के लिए चक्र के समान

घातक है वह गरुड़ हमारा कल्याण करे। तथा ब्रह्मस्पति हमारा कल्याण करे। त्रिविध ताप की शांति हो।

प्यारे साधको!

यहाँ उपनिषद् का ऋषि देवगण से प्रार्थना है। आज का मनुष्य देवों के जिक्र से हँस भी सकता है। वह पूछेगा कि कहाँ हैं देव ? इसका एक ही कारण है कि वह प्रकृति (कुदरत) से दूर चला गया है। मैं कहती हूँ कि सूर्य, जल, वायु आदि प्रत्यक्ष देव हैं। अन्य देवों को हम भले नहीं देख सकते हैं परंतु ऋषियों ने जो प्रार्थना की है तो कुछ सत्य भी होगा। यहाँ कम से कम हम इतना अर्थ तो लगा सकते हैं कि प्रत्यक्ष और परोक्ष में विलसित दैवी शक्तियाँ हमें ऐसी सद्प्रेरणा दें कि हम कल्याणकारी बातों को ही सुनें।

दोस्तो, आंख, कान और वाणी सबके पास हैं परंतु क्या देखना क्या नहीं देखना ? कितना सुनना क्या नहीं सुनना ? और कहाँ बोलना, क्या बोलना तथा कहाँ नहीं बोलना ? ये सबलोग नहीं जानते हैं। उपनिषद् के मंत्र हमें जगाते हैं।

उपनिषद् के कुछ मंत्र शांति मंत्र के नाम से ही प्रसिद्ध हैं क्योंकि उन मंत्रों के अनुसार जीने और ध्यान करने से मनुष्य को शांति प्राप्त हो सकती है।

प्यारे साधको!

आपकी इन्द्रियाँ कोई कचरे का डिब्बा नहीं हैं। कैसे शब्दों को सुनना और क्या नहीं सुनना ? यह आपके हाथों में है। श्रवणेन्द्रिय के प्रति आप इतने सजग होने चाहिए कि आप कुछ भी नहीं सुन लें। मंत्र के प्रारंभ में ही कहते हैं कि हम कल्याणकारी वचनों को सुनें।

दोस्तो, ज़रा सोचो कि आज आप क्या सुन रहे हैं? आज का मनुष्य इतना सस्ता हो गया है कि धर्म के नाम से फिल्मों के नाम से, संगीत के नाम से, या सीरियलों के नाम से, ट्विटर के नाम से उसके कान में कुछ भी डालते रहो वह मूढ़ की तरह सबकुछ सुनता जाता है। देखने लायक और न देखने लायक सबकुछ देखता जा रहा है। बोलने लायक और नहीं बोलने लायक सबकुछ बोलता जा रहा है। फिर भी समाज-शास्त्री कहते हैं कि आज के समाज में काफी सुधारा आ गया है। शिक्षण-शास्त्री कहते हैं कि शिक्षा का प्रमाण बढ़ा है। सरकार कहती है कि राज्य और राष्ट्र विकास कर रहा है। रेशनालिष्ट कहते हैं कि मनुष्य में बुद्धि का प्रमाण बढ़ा है। मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या बुद्धि, शिक्षा, विकास और सुधार का यही परिणाम है कि निरर्थक बातें आपके मन को दूषित करती रहें? क्या आपकी शिक्षा और मति सभी क्षेत्रों में फेले हुए कूड़े कर्कट का स्वीकार कर रही है?

लगता है कि लाखों वर्ष पहले कुछ मनीषि और युगदृष्टाओं को पता चल गया होगा कि सिविलाइज़ेशन के नाम पर आदमी फिर से जंगल युग में जा रहा होगा। इसलिए ही शायद उन्होंने बहुत पहले से चेताया और उपनिषद् मंत्रों से प्रार्थना की कि हे देवगण हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें और नेत्रों से शुभ दर्शन करें।

प्यारे साधको!

ज़रा स्थिर बुद्धि से सोचना कि आज आप जो कुछ भी देख रहे हैं, वह शुभ दर्शन है? शुभ दर्शन का अर्थ में इतना ही करती हूँ कि जो आपके चित्त को शांति दे। आपको स्थिरता दे। शुभ दर्शन का अर्थ है कि जो मन को दूषित न करे। शुभ दर्शन का अर्थ है जो आपके मस्तिष्क को

विकृत न करे। शुभ दर्शन का अर्थ है, जहाँ से शुभ प्रेरणाएं मिलें। जिससे आपको सजग रहने में मदद मिले। शुभ दर्शन मनुष्य को अविचारित कृत्य अथवा अपकृत्य में कभी प्रेरित नहीं करता।

मंत्र कहता है कि हम स्थिर अंग और शरीर से स्तुति करने वाले लोग देवताओं के लिए हितकर आयु का भोग करें।

प्यारे साधको!

बात ज़रा समझने जैसी है। मनुष्य का शरीर और सारे अंग कब स्थिर रहते हैं? मैं कहती हूँ कि जब उसका चित्त स्थिर हो। दोस्तो, चित्त स्थिर कब रहता है? जब उसकी इन्द्रियाँ शुभ दर्शन, शुभ श्रवण, शुभ वचन अथवा मौन में स्थिर हों। शरीर और मन परस्पर जुड़े हुए हैं, यह बात मैं कई बार कह चुकी हूँ।

मैंने देखा है कि कुछ लोग बैठे बैठे अपने पैरों को हिलाते रहते हैं या हाथ से कुछ न कुछ करते रहते हैं। जैसे अकारण सर खुजलाना, बाल संवारते रहना इत्यादि। ये सब चंचलता मन की अस्थिरता के कारण है। मनुष्य अंदर से बहुत विचलित है। काम से, क्रोध से, भय से और दबाव से वह तनावग्रस्त है। कुछ तो गड़बड़ है। अगर ऐसा नहीं होता तो मनुष्य का उठना, बैठना, बोलना सबकुछ सजगता पूर्ण और सम्यक होता।

मैंने अच्छे अच्छे लोगों को शरीर के अंगों को अकारण हिलाते हुए या उसे फालतू बातों में व्यस्त रखते हुए देखा है। अंजान में वे लोग ऐसी चंचलता के शिकार बने हुए हैं। मेरे पास बैठे हुए कुछ लोग जब कभी कभी पैर हिलाने लगते हैं तब मैं अचानक उसे पूछ लेती हूँ कि भाई! पैरों में क्या हो रहा है? तब मुझे जवाब मिलता है कि – बस ऐसे ही। और

थोड़ी देर के लिए स्थिर हो जाता है। थोड़ी देर के बाद फिर शुरू हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? दोस्तो, यह उनके भीतर की अव्यवस्था बाहर झांक रही है।

उपनिषद् कहते हैं कि हमारे अंग और शरीर स्थिर हों। स्थिरता के साथ स्तुति हो। अर्थात् हम सजगता से स्तुति करें अर्थात् हम जो कुछ भी बोले, प्रार्थना करें, संकल्प करें उसमें सजगता हो। फिर कहते हैं कि देवों के लिए हितकर हो ऐसी आयु का भोग करें। दोस्तो, इसका अर्थ क्या है? बात ज़रा समझने जैसी है।

मनुष्य का आयुष्यमान होना तभी सार्थक है जब उसकी आयु का दैवी कार्यों में विनियोग हो। दूसरे अर्थ में यहाँ कोई आकाश में विचरते देवों की बात नहीं है। परंतु इन्द्रियों की शक्ति की ही बात है। प्रत्येक इन्द्रियों के देव हैं। उन देवों की शक्ति से सब इन्द्रियाँ अपने अपने क्षेत्र में काम करती हैं। उपनिषद् का ऋषि स्तुति करता है कि हम देवों के लिए हितकर आयु का भोग करें अर्थात् हम जितना जिएं उतने वक्त इन्द्रियों के देवों का कहीं भी अहित न हो। इन्द्रियों का दुरुपयोग न हो। इन्द्रियाँ स्वस्थ रहें और उनके द्वारा शुभ कार्य हो ऐसा जिएं।

इन्द्रियों की शक्ति का व्यय न हो और इन्द्रियाँ अनुचित कृत्य में कभी प्रवृत्त न हो ऐसी भावना हो। मंत्र में आगे कहते हैं कि परम ज्ञानवान् इन्द्र और पुषा हमारा कल्याण करें। अरिष्टों को नष्ट करने वाला गरुड़ और ब्रह्मस्पति हमारा कल्याण करें। त्रिविध ताप की शांति हो। संक्षेप में उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि दृश्यमान और अदृश्य सभी देवों से कल्याण की याचना करो। हमारी दृष्टि की क्षमता के बहार का विश्व अति विराट है।

इसलिए कभी ऐसा नहीं समझना कि जिसे हम नहीं देख सकते वह अस्तित्व में नहीं है।

प्यारे साधको!

अब मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है। एक स्पष्ट समझ और सजगता के साथ इस मंत्र को समझकर उतरो ध्यान में और आत्मकल्याण के साथ विश्व कल्याण को भी प्राप्त करो।



धरणा - 87

केनोपनिषद् शांतिमंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 87

केन तथा छांदोग्य बताया, इन्द्रिय बल शुभ कहि सराहा।
ब्रह्म जगत परस्पर पूरक, सत्य न ध्यावे ते जन मूर्ख॥

ध्यान विधि - 87

इन्द्रियों को शत्रु नहीं पदंतु
मित्र मानकर तथा उन
शक्तियों को शुभ
समझकर ब्रह्म और जगत
के अनिवार्य समन्वय के
रहस्य को ध्यान के द्वारा
जान लो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 77

उपनिषद् दमन के पक्ष में नहीं है। दमन से मन विकृत हो जाता है। ऐसा मन तिरस्कार और द्वेष आदि के रूप में अथवा किसी भी विकृत रूप में दूसरे वास्ते से उभर आता है।

हमारे उपनिषद् तो स्वास्थ्य, देहपुष्टि, इन्द्रियपुष्टि और साथ साथ ज्ञानपुष्टि के पक्ष में हैं। केनोपनिषद् का शांति मंत्र यही कह रहा है कि भूखा, प्यासा, क्षीण और दुर्बल इन्द्रियों वाला मन शांति नहीं पा सकेगा। शांति के लिए ऋषि प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मेरे शरीर के अंग, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ पुष्ट हों।

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
सर्वम् ब्रह्मौपनिषदम् माऽहं ब्रह्म
निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणम् मेऽस्तु।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्यु धर्मास्ते
ॐ शांतिः शान्तिः शान्तिः॥

अर्थ :- मेरे अंग पुष्ट हों तथा मेरा वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल और संपूर्ण इन्द्रियाँ पुष्ट हों। यह सब उपनिषद्वेद्य ब्रह्म है। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ। ब्रह्म मेरा निराकरण न करे इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों में जो धर्म हैं वे आत्मा में लगे मुझ में हों, वे मुझमें हों। त्रिविध ताप की शांति हो।

प्यारे साधको!

इस मंत्र पर ध्यान करने से पहले इसके अर्थ को थोड़ा विशेष रूप से समझ लीजिए। भारत ने धर्म के नाम पर शरीर और इन्द्रियों को

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 79

बहुत नकार लिया। बहुत दमन हो चुका। शरीर को बहुत पीड़ा दी। शरीर के साथ बहुत अन्याय हुआ। परंतु हमारे वेद शरीर विरोधी नहीं हैं। न ही इन्द्रिय विरोधी हैं। न एन्द्रिक सुखों के विरोधी हैं।

दोस्तो, वेद के बाद पुराण काल आया और पुराणों के बाद सनातन धर्म अनेक संप्रदायों में बंट गया। उनमें से काफी संप्रदायों ने इन्द्रियों को शरीर को, इन्द्रिय भोगों को शत्रु माना। नारी को अधम और नर्क का द्वार माना। जो वास्तविकता के विपरीत था। इसलिए उन संप्रदायों के लोगों का मन अपराध भाव से भर गया। परंतु बात अकुदरती और अवैज्ञानिक थी। वास्तविक रूप से शरीर की उपेक्षा या विरोध करना संभव नहीं था। इसलिए दंभ का जन्म हुआ। कुछ लोग इन्द्रिय सुखों को भुगतते भी गए और जाहिर में भोगों की निंदा करके ब्रह्मचर्यवाद की बड़ी बड़ी बातें करने लगे। इसका परिणाम आप अपनी नज़रों के सामने देख रहे हैं। अखंड ब्रह्मचारियों के द्वारा कभी कोई साधवी तो कभी कोई लड़की गर्भवती बन जाती है। ऐसे असंख्य किस्सों पर परदे गिर जाते हैं। परंतु कभी कभी अंदरूनी फूट के कारण एकाद किस्सा मीडिया तक पहुंच जाता है।

दोस्तो, ये सब धर्म क्षेत्र में पैटे हुए दंभ और आडंबर का परिणाम है। स्वयं के शरीर की स्वयं के द्वारा ही निंदा करना यह कैसा हास्यास्पद लगता है। वेद के अनुसार देखा जाए तो ये तो वेद विरोधी प्रवृत्ति है। वेदों ने शरीर को पीड़ा देने की बात कहीं भी नहीं की है।

केनोपनिषद् के आरंभ से ही मनुष्य देह में ब्रह्म के निवास की बात की है। विश्व के जितने भी धर्म उदासीनता, आत्मनिंदा, इन्द्रियनिंदा, शरीर निंदा या नर-नारी के रिश्तों की निंदा करते हैं या दमनकारी सिद्धांतों

पर खड़े हैं उन सभी को कम से कम एक बार वेद और उपनिषद् सुनाने चाहिए।

प्यारे साधको!

पत्ता सूख जाए और वृक्ष पर से सहजता से गिर पड़े यह एक बात है और कोपलों को जबरदस्ती वृक्षों से उखाड़ दिया जाए वह दूसरी बात है। ऐसा करने से तो पत्ते को आप जन्म के पहले ही खत्म कर रहे हो तथा वृक्ष को खरोंच पहुंचा रहे हो। नासमझों को वैरागी के वस्त्र पहना देना ठीक ऐसा ही है।

दोस्तो, मन आसक्ति मुक्त हो जाए, संसार से विरक्त हो जाए और कोई मनुष्य पारीवारिक जीवन का अथवा सांसारिक जीवन का सम्यक त्याग करे यह दूसरी बात है। परंतु नासमझों पर त्याग का थोपना ये पाप को जन्म देने का तरीका है।

उपनिषद् दमन के पक्ष में नहीं है। दमन से मन विकृत हो जाता है। ऐसा मन तिरस्कार और द्वेष आदि के रूप में अथवा किसी भी विकृत रूप में दूसरे रास्ते से उभर आता है।

हमारे उपनिषद् तो स्वास्थ्य, देहपुष्टि, इन्द्रियपुष्टि और साथ साथ ज्ञानपुष्टि के पक्ष में हैं। केनोपनिषद् का शांति मंत्र यही कह रहा है कि भूखा, प्यासा, क्षीण और दुर्बल इन्द्रियों वाला मन शांति नहीं पा सकेगा। शांति के लिए ऋषि प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मेरे शरीर के अंग, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ पुष्ट हों।

प्यारे साधको!

स्वस्थ मनुष्य ही स्वस्थ विचार कर सकता है। दूसरों के साथ स्वस्थ व्यवहार कर सकता है और स्वस्थ जीवन जी सकता है तथा ज्ञान

में प्रवेश कर सकता है। क्योंकि ज्ञान स्वयं उत्तम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य का आध्यात्मिक अर्थ है – स्व में स्थित होना।

प्यारे साधको!

मझे की बात तो यह है कि जिन वेदों में से सारे धर्म शास्त्र और संप्रदाय उतरे हैं, वे वेद कहते हैं कि देह सहित इन्द्रियाँ और उनकी शक्ति उपनिषद् मान्य ब्रह्म है। फिर ऋषि प्रार्थिते हैं कि अंतरब्रह्म और विराट् ब्रह्म दोनों में एकरूपता रहे। मैं ब्रह्म से विमुख न होऊँ और ब्रह्म मेरा परित्याग न कर दे। इस तरह हम परस्पर सन्मुख रहें।

प्यारे साधको!

यहाँ अंतरब्रह्म का अर्थ आत्मा करना है। आत्मस्थिति के बिना का शरीर शौष्ठव और इन्द्रियसुख अर्थहीन है। वह केवल संसार बन जाता है। अर्थात् सारहीन है। और आत्मस्थिति में लीन रहकर भोगा हुआ सुख कल्याणकारी आनंददाता और मोक्षमार्ग का बल बन जाता है।

ऋषि कहते हैं कि उपनिषद् में जो धर्म है अर्थात् जो आत्मज्ञान है वह मुझमें हो, मुझमें हो। अर्थात् मैं बाहर से दृष्ट-पुष्ट रहकर भोगों को भोगने वाला भले बनूँ फिर भी आत्मदशा का विस्मरण न हो। यहाँ संसार और सन्यास के सहज समन्वय की बात की है। कि जहाँ ज्ञान की मौजूदगी है और संसार के प्रति अरुचि नहीं। संसार का उत्तम प्रकार से स्वीकार है परंतु आत्म स्थिति में बेहोशी नहीं। कितनी अद्भुत बात है! दोस्तो, यही ज्ञान है। महापुरुषों के वचन ही परम शास्त्र हैं। उपनिषद्कार कहता है कि शरीर शौष्ठव और इन्द्रियबल पाकर उसका उपयोग आत्मज्ञान प्राप्त करने में करें। यह एक धर्म सम्मत बात है। अगर शरीर क्षीण है, बीमार है,

इन्द्रियाँ पंगु है, तो साधना कैसे होगी ? दुःखी मनुष्य महासुख के विश्व में कैसे प्रवेश कर पाएगा ?

प्यारे साधको !

यहाँ मुझे भगवान बुद्ध के जीवन का एक प्रसंग याद आ रहा है। एक बार भिक्षु गौतम बुद्ध ने कई दिनों तक भोजन का त्याग कर दिया। शरीर क्षीण हो गया। घूमते फिरते वे एक नदी के तट पर आए। नदी के उस पार कोई सिद्ध गुरु रहते थे, गौतम उनके पास पहुँचना चाहते थे। नदी तट पर नौका की कोई सुविधा नहीं थी और देह दमन के कारण गौतम एक छोटी सी नदी पार करने के लिए सक्षम नहीं थे। वे विवश हो गए और उनके मन में अचानक विचार आया कि मैं एक छोटी सी नदी को पार नहीं कर सकता तो भवसागर कैसे पार कर पाऊंगा ? मेरे शरीर को मैंने भोजन न देकर क्षीण कर दिया और इन्द्रियों को दुर्बल बना दिया यह मेरी गलती थी। यदि आज मेरा शरीर सशक्त होता तो मैं नदी तैर जाता। और तब से गौतम बुद्ध ने भोजन लेना शुरू किया।

प्यारे साधको !

भगवान बुद्ध के निर्देशित किये हुए मार्ग को मज्जिम निकाय कहते हैं। मज्जिम निकाय का अर्थ है – मध्यम मार्ग। यही बात भगवत गीता कहती है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि अति बोलने वाला या अति मौन रहने वाला, अति भोजन करने वाला या अति भूखा रहने वाला, अति सोने वाला या अति जागने वाला मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। दोस्तो, यहाँ हम कह सकते हैं कि बुद्ध का मध्यम मार्ग उपनिषद् का ही विचार है और गीता उपनिषद् का सार।

वेद कहते हैं कि शरीर और इन्द्रियों को पुष्ट रखो परंतु आत्म स्मरण मत चूको। आत्मविस्मृति सत्य की विस्मृति है और सत्य को विस्मृत करने वाला विनाश को निमंत्रण देता है। आत्मस्मृति का अर्थ है, प्रतिपल सजगता। भौतिकता का अतिरेक नहीं और ज्ञान का विस्मरण नहीं। यही है मध्यम मार्ग।

प्यारे साधको!

आपको इतना ही स्मरण रखना है कि इतना तप, इतना कष्ट या इतना देहदमन न करो कि शरीर रुग्ण बन जाए और मन विकृत। शरीर को सात्विक भोजन से पुष्ट रखो, मन को सद्विचार को प्रफुल्लित रखो और अंतर को सत्यज्ञान से प्रकाशित रखो।

दोस्तो, ज्ञानताप से बड़ा प्रकाश कोई नहीं। देह की रक्षा करो। उसे पुष्ट रखो। अस्तित्व से शक्ति की, पुष्टि की और सुख की याचना करो। उन शक्तियों के साथ ज्ञान का संयोग होने दो। ब्रह्म से विमुख न होने का अर्थ है, सत्य के सन्मुख रहना।

प्यारे साधको!

इतनी स्पष्ट समझ के बात जब उपनिषद् के इस मंत्र पर ध्यान करेंगे तब धीरे धीरे एक ऐसी अवस्था आएगी कि प्रतिपल ब्रह्म का अनुभव होगा। क्योंकि देह, इन्द्रियाँ और बल सबकुछ आखिर तो ब्रह्मज्ञान याचने के लिए ही है। जब साध्य प्राप्त हो जाएगा तब साधना, संकल्प और साधक सब अदृश्य हो जाएंगे और त्रिविध ताप की शांति होगी।



धरणा - 88

ऐतरेयोपनिषद् शांतिमंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 88

एतरेय कहे मन वच कर्मा, तिनहुं से तुम बनो एक धर्मा।
सत्य स्वीकार करो शुद्ध भावा, वही रक्षक बने नहीं अभावा।
सत्य ध्यान रूप साधक बनहीं, तब शांति रक्षा सुख लहहीं॥

ध्यान विधि - 88

मन, वचन और कर्म में
ध्यान के द्वारा एकरूपता
साधक वह उसी ही अपना
बल बनाकर शांति और
सुरक्षा को प्राप्त कर लो ।



मन और वाणी में अर्थात् वाणी और वर्तन में साम्य आता है तभी समझना कि मनुष्य बदल रहा है, ऐसा आदमी काम का है। ऐसे लोग पृथ्वी की शोभा हैं। धरती के रत्न हैं। आदमी जब मन और वचन से एक होता है तब उसका कर्म सम्यक होता है। अर्थात् वह उचित कर्म करता है। सम्यक कर्म वही है कि जिससे बंधन नहीं परंतु मुक्ति का मार्ग खुलता है। तभी वह अस्तित्व को कह सकता है कि हे परमात्मा! तू स्वयं मुझमें प्रकाशित हो। वह स्वप्रकाश परमात्मा मेरे समक्ष आविर्भूत हो अर्थात् वह परमात्मा प्रकाश रूप से मेरे भीतर मौजूद भले रहे परंतु मुझको उसकी प्रतिपल अनुभूति होनी चाहिए। हे मन और वाणी! तुम इतने परिशुद्ध हो जाओ कि सत्य मेरी ओर आए। मैं जो कुछ भी सुनूं वह सत्यमय हो और ज्ञानमय हो। वह श्रवण किया हुआ ज्ञान मेरा परित्याग न करे।

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता

मनो मे वाचि प्रतिष्ठित-मावीरावीर्म एधि।

वेदस्य म आणस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्

संदधाम्यृतम् वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु

तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

अर्थ :- मेरी वागिन्द्रिय मन में स्थित हो और मन वाणी में स्थित हो (अर्थात् मेरी वागिन्द्रिय और मन एक-दूसरे के अनुकूल रहें।) हे स्वप्रकाश परमात्मा! तुम मेरे समक्ष आविर्भूत होओ। (हे वाक् और मन!) तुम मेरे प्रति वेद को लाओ। मेरा श्रवण किया हुआ ज्ञान मेरा परित्याग न करे। अपने इस अध्ययन के द्वारा मैं रात और दिन को एक कर दूँ (अर्थात् मेरा अध्ययन अहर्निश चलता रहे)। मैं ऋतु (वाचिक सत्य) का भाषण करूँ और सत्य (मन में निश्चय किया हुआ सत्य) बोलूँ। वह ब्रह्म मेरी रक्षा

करे; वह वक्ता की रक्षा करे। वह मेरी रक्षा करे और वक्ता की रक्षा करे – वक्ता की रक्षा करे। त्रिविध ताप की शांति हो।

प्यारे साधको!

यह एक अब्दुत शांति मंत्र है। उपनिषद्कार कहते हैं कि मेरी वाणी मन में स्थिर हो और मन वाणी में। अर्थात् दोनों में एकरूपता हो।

दोस्तो, दुनियां में ज्यादातर लोग ऐसे हैं कि बोलते कुछ और हैं और करते हैं कुछ और ही। उनका मन पल पल बदलता रहता है। वाणी और मन की एकसूत्रता एक प्रमाणिक मनुष्य की निशानी है। मन बहुआयामी है। वह अपनेआप क्षण क्षण बदलता रहता है।

दोस्तो, आपका मन एक स्वयं संचालित यंत्र जैसा हो गया है क्योंकि आपने कभी उसके प्रति लक्ष्य ही नहीं दिया। मन के ऑटोमेटिक गियर बदलते रहते हैं और आपके जीवन की गाड़ी को अंधाधुंध चलाते रहता है।

हम कहते हैं कि फलाना आदमी बोलकर फिर गया। उसने वचन दिया था परंतु तोड़ दिया। दोस्तो, ऐसा करने में उसका दोष नहीं है। उसका मन अनियंत्रित है। आवेश में आकर मन के प्रभाव में वाणी ने कुछ कह दिया, वचन दे दिया परंतु कुछ ही क्षणों में मन ने पलटी मारी। वह रिवर्स गियर में चला गया। बोलने वाला सजगता से तो बोला नहीं था, न ही उसके पास खुद के मन को समझने की क्षमता थी, न अपने मन को रूपांतरित करे के लिए सक्षम; जिसकी वजह से मन के साथ बेचारा आदमी भी पलटी मारता रहा। मन के कारण मनुष्य हजारों-हजारों वर्ष से बदनाम होता रहा है। ऐसा नहीं कि मनुष्य के पास क्षमता नहीं है परंतु

उस क्षमता को जगाने के प्रयास का अभाव और अजाग्रति के कारण वह निकम्मा सा हो गया है।

ऐतरेयोपनिषद् आज के प्राण प्रश्न के मूल में जाकर बात कर रहा है। वह कहता है कि मेरे मन और वाणी एक दूसरे से अनुकूल रहें। फिर मंत्र के दूसरे हिस्से में कहता है कि हे स्वप्रकाश परमात्मा तू मेरे समक्ष आविर्भूत होओ।

प्यारे साधको!

मन और वाणी में अर्थात् वाणी और वर्तन में साम्य आता है तभी समझना कि मनुष्य बदल रहा है, ऐसा आदमी काम का है। ऐसे लोग पृथ्वी की शोभा हैं। धरती के रत्न हैं। आदमी जब मन और वचन से एक होता है तब उसका कर्म सम्यक होता है। अर्थात् वह उचित कर्म करता है। सम्यक कर्म वही है कि जिससे बंधन नहीं परंतु मुक्ति का मार्ग खुलता है। तभी वह अस्तित्व को कह सकता है कि हे परमात्मा! तू स्वयं मुझमें प्रकाशित हो। वह स्वप्रकाश परमात्मा मेरे समक्ष आविर्भूत हो अर्थात् वह परमात्मा प्रकाश रूप से मेरे भीतर मौजूद भले रहे परंतु मुझे उसकी प्रतिपल अनुभूति होनी चाहिए। हे मन और वाणी! तुम इतने परिशुद्ध हो जाओ कि सत्य मेरी ओर आए। मैं जो कुछ भी सुनूं वह सत्यमय हो और ज्ञानमय हो। वह श्रवण किया हुआ ज्ञान मेरा परित्याग न करे।

प्यारे साधको!

यहाँ मुझे कुछ कहना है। आप श्रवण तो खूब करते हो। ज्ञान की बातों का भी श्रवण करते हो। पुराने जमाने में तो संतो को ढूंढना पड़ता था, शास्त्रज्ञ को निर्मंत्रित करना पड़ता था अथवा शास्त्रों को सुनने के लिए

दूर दूर तक जाना पड़ता था आज विज्ञान और तकनीकी ज्ञान इतना विकसित हो गया है कि आप अनेक अनेक रास्ते से श्रवण कर सकते हो। टी.वी. चेनल्स, इन्टरनेट, मोबाईल आदि।

हेन्डस्फ्री को कान में लगाकर आप स्कूटर या कार चलाते चलाते भी सत्संग सुन सकते हैं। नेट पर एन्साइक्लोपीडिया, विकीपीडिया और अन्य साहित्य की अनेक वेबसाइट्स पर पी.डी.एफ. फाइल और ओडियो मुफ्त में उपलब्ध है। आपके कमरे में बैठे बैठे एक ही बटन दबाकर आप सारे उपनिषदों के प्रिंट मिनिटों में पा सकते हो। किसी भी शब्द का संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी अनुवाद सेकन्डों में मिल सकता है फिर भी दुनियां में दिन-ब-दिन अज्ञान क्यों बढ़ता जा रहा है?

श्रवण किया हुआ ज्ञान सेकन्डों में ही आपका परित्याग क्यों कर देता है? आज सत्संग में बैठा हुआ आदमी कल जुएखाने में या शराबखाने में क्यों नज़र आता है? सत्संग सभाओं में ब्रह्मचर्य की बातें और कंचन कामिनी की बातें सुनकर आने वाला वैश्यालयों में क्यों नज़र आता है? क्यों? क्यों? क्यों? आखिर क्यों?— उसका एक ही कारण है – मनुष्य का कमज़ोर मन। इसीलिए ऋषि कहते हैं कि मेरे मन और वाणी में एकरूपता आए। ऋषि एक एक कदम आगे बढ़ा रहे हैं। ऐसा होने से मन, वचन और कर्म तीनों में समानता आ जाएगी। फिर श्रवण किया हुआ ज्ञान विफल नहीं जाएगा। वह ज्ञान केवल सुनने के लिए, मन बहलाने के लिए, केवल चेन्ज के लिए या दिखावे के लिए अथवा बौद्धिक सामग्री बढ़ाने के लिए नहीं होगा परंतु सहज रूप से आचरण में उतर आएगा।

दोस्तो, यही है स्वप्रकाश परमात्मा का आविर्भूत होना। क्योंकि स्वप्रकाश परमात्मा जब आविर्भूत होते हैं तब अंधेर में लातें नहीं लगतीं।

अंधेरे के लिए कोई अवकाश ही नहीं रहता जो कुछ भी होता है वह ज्ञान के प्रकाश में होता है, उचित ही होता है।

तीसरे कदम पर ऋषि कहते हैं कि मेरा अध्ययन अहर्निष चलता रहे। मेरे अध्ययन के द्वारा मैं दिन और रात को एक कर दूँ। इसका अर्थ है कि पढ़ाई बौद्धिक संतोष के लिए, रोटी कमाने के लिए या दुनिया को कुछ दिखा देने के लिए नहीं परंतु पूर्ण रूपांतरण के लिए होनी चाहिए। निद्रा समाधि बन जाने का अर्थ है कि नींद में भी कोई अघटित कृत्य न घटे। बाहर से प्रकाश हो या अंधेरा, दिन हो या रात परंतु भीतर एक सही समझ का प्रकाश अहर्निष बना रहे। स्वप्न पर भी वश हो जाने का अर्थ है कि स्वप्न में भी गलती न हो पाए अर्थात् निद्रा में भी जाग्रति बनी रहे।

अब अंतिम चरण में ऋषि कहते हैं कि मैं सत्य बोलूँ और मन से सत्य निश्चय करूँ और यही सत्य ब्रह्म मेरी रक्षा करे।

प्यारे साधको!

मंत्र अंत में कहता है कि वही सत्यब्रह्म वक्ता की रक्षा करे, प्रार्थना करे वाले की रक्षा करे, रक्षा करे।

दोस्तो, यह एक महासंकल्प है। यह विद्वान दिखने के लिए धर्म सभाओं में बोल देने की कोई साधारण चीज़ नहीं है परंतु यह तो एक पारदर्शक और प्रमाणिक चित्त का निवेदन है। इन मंत्रों में अपार शक्ति है। इन मंत्रों पर अगर आप समग्रता से ध्यान करेंगे तो वे आपको एक नए मनुष्य के रूप में जन्म दे सकते हैं। परंतु आपका दृढ़ संकल्प, सही समझ और संपूर्ण लक्ष्य अनिवार्य है। समग्रता के साथ इन मंत्रों पर आप वास्तविक रूप से ध्यान में उतर जाएंगे तो त्रिविध ताप की शांति हो जाएगी।



धरणा - 89

वेद मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 89

पूर्व के ऋषि शांति के ध्याता, ब्रह्म निष्ठ अरु ज्ञान विख्याता ॥
तेहि ने सबसे शांति याची, ध्यान धरि धरि शांति स्थापी ॥

ध्यान विधि - 89

जड़-चैतन सहित समग्र
अस्तित्व से शान्ति की
याचना करते हुए ध्यानस्थ
होकर शान्तरूप बना
जाओ ।



उ

पनिषद् का ऋषि चिंतनशील है। उसका चिंतन अति सूक्ष्म फिर भी विराट है। उसने एक अनुभवगम्य बात की है। यहाँ मंत्र में एक महान संकल्पना है और विश्वकल्याण का भाव है। आकाश से लेकर पाताल तक कहीं भी जब असंतुलन पैदा होता है तो ब्रह्मांड के किसी न किसी कोने में कुछ जीव दुःख और अशांति का अनुभव करते हैं। जो साधक सूक्ष्म अनुभूतियों में से गुजर चुका है वह अपनी चेतना को अन्य की चेतना से अलग नहीं समझ सकता। उसका हृदय इतना करुणावान बन जाता है कि वह अन्य के दुःख से दुःख की और अन्य के सुख में सुख की अनुभूति करता है। हमारे शास्त्र ऐसी आत्माओं के लिए करुणामूर्ति, करुणानिधि, दयानिधि आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः

पृथिवि शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।

वनस्पतयेः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः

सर्वं शान्ति शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अर्थ :- हे परब्रह्म ! प्रकाशित आकाश में शांति प्रसरो। समग्र अंतरिक्ष में भी शांति विस्तरो। पृथ्वी पर शांति बरसो और जल, वनस्पति, वृक्ष और बेलियों पर भी समग्र ब्रह्मांड में शांति विस्तरो। परब्रह्म भी शांति में रहे और सर्व स्थान में हमेशा केवल शांति ही शांति रहे। हमको और जीव प्राणी मात्र को शांति प्राप्त हो, शांति प्राप्त हो, शांति प्राप्त हो।

प्यारे साधको!

यह शांति संकल्प एक दिव्य भाव है। यह कोई शब्द नहीं परंतु एक अर्थ में प्रार्थना पूर्ण ध्यान है। दोस्तो, ध्यान किसे कहेंगे? जब आप एक शुभ संकल्प को अपनी सारी ऊर्जा दे दो और फिर उसमें स्थिर हो

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 99

जाओ, यह है ध्यान। किसी निश्चित धारणा में अथवा दिव्य भाव दशा में खो जाने का अर्थ है-ध्यान।

इस ध्यान में आकाश से लेकर पृथ्वी तक, परब्रह्म से लेकर जीवप्राणीमात्र तक शांति बरसे ऐसा भाव है। यह बड़ा ऊमदा भाव है। परब्रह्म से लेकर वृक्ष, वनस्पतियों और बेलिपत्ते की शांति का अनुभव करो – ऐसा भाव शांति का एक महान खोजी ही कर सकता है। आज का मनुष्य खुद शांति चाहता है परंतु दूसरों की शांति के मूल्य पर। दूसरे की शांति का भोग लेकर अगर आप शांति पा रहे हो तो वह एक विकृत शांति है, पिशाची शांति है, आभासी और घातक शांति है। यहाँ ऋषि एक वास्तविक शांति की बात कर रहे हैं, एक शाश्वत शांति की बात कर रहे हैं।

दोस्तों, यहाँ तो पूरे ब्रह्मांड के संदर्भ में बात चल रही है। परंतु मैं तो कहती हूँ कि शांति बनाए रखने का आरंभ घर से करो। घर में एक व्यक्ति अशांत है और दूसरा संवेदनशील, तो एक अशांत दूसरे को अशांत या बेचैन कर देगा। वहाँ प्रसन्नता का अभाव रहेगा।

दोस्तो, प्रसन्नता का अभाव शांति और अशांति के बीच की एक अवस्था है। दुनियां के काफी लोग ऐसी मनःस्थिति में जी रहे हैं।

उपनिषद् का ऋषि चिंतनशील है। उसका चिंतन अतिसूक्ष्म फिर भी विराट है। उसने एक अनुभवगम्य बात की है। यहाँ मंत्र में एक महान संकल्पना है और विश्वकल्याण का भाव है। आकाश से लेकर पाताल तक कहीं भी जब असंतुलन पैदा होता है तो ब्रह्मांड के किसी न किसी कोने में कुछ जीव दुःख और अशांति का अनुभव करते हैं। जो साधक सूक्ष्म अनुभूतियों में से गुजर चुका है वह अपनी चेतना को अन्य की चेतना से अलग नहीं समझ सकता। उसका हृदय इतना करुणावान बन जाता है कि

वह अन्य के दुःख से दुःख की और अन्य के सुख में सुख की अनुभूति करता है। हमारे शास्त्र ऐसी आत्माओं के लिए करुणामूर्ति, करुणानिधि, दयानिधि आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं।

वास्तव में इस मंत्र की दशा भी ॐ सहनाभवतु... जैसी हो गई है। यह तथाकथित शांतिप्रिय लोगों की बदौलत है। शांति के मंत्र बोल देना और शांति में जीना इन दोनों बातों में ज़मीन आसमान का फर्क है। पूरे विश्व में शांति अभियान चलाने वाली अनेक संस्थाएं हैं। परंतु क्या उन संस्थाओं के प्रत्येक सभ्य को वास्तविक शांति का बोध होगा! वे शांति में जीते होंगे! या केवल शांति की बातें करते होंगे! दोस्तो, ऐसी संस्थाएं वैचारिक शांति चाहती हैं। कुछ स्थानों पर केवल कागज़ पर शांति करार हो रहे हैं और सीने में एक दूसरों के लिए आग भभक रही है। कौन स्वीकारेगा इस कड़वे सच को? अगर सच कहेंगे तो मेम्बरशिप, स्टेटस और सन्मान हाथ से निकल जाएगा। कागज़ पर हो रहे शांति प्रस्ताव तो भय में से पैदा होते हैं। वह एक समझौता है, समझ नहीं। वह राजनीति है, अध्यात्मिकता नहीं। वह करार है, स्वीकार नहीं। वह शर्त है, स्वेच्छा नहीं। वह औपचारिकता है, प्रेम नहीं। शर्तें और औपचारिकता टूट सकती हैं, प्रेम अटूट होता है। वह हमेशा बढ़ता जाता है और दूसरों को जोड़ता जाता है।

प्यारे साधको!

शांति के नाम पर केवल राष्ट्रीय स्तर पर चालाकियां हो रही हैं ऐसा नहीं है। छोटे छोटे परिवारों में भी यह राजनीति चल रही है, जिसने मनुष्य को निकम्मा बना दिया है। खैर!

उपनिषद् का ऋषि कहता है कि जब पूरे ब्रह्मांड के लिए अर्थात् जीव प्राणीमात्र जीव प्राणीमात्र के लिए शांति चाहेगा और सभी जीव जड़-चेतन सबकी शांति चाहेगा तभी विश्व में वास्तविक शांति की तरंगें फैल सकती हैं।

इस मंत्र में उपनिषदकार ने एक वास्तविक और समग्रलक्षी शांति का प्रमाणिक प्रयास करके समग्र सृष्टि के प्रति अपना प्रेम अभिव्यक्त किया है और शांति स्थापित करने के लिए खुद प्रतिबद्धित हो रहा है।

यहाँ ऋषि ने केवल पृथ्वी पर शांति नहीं चाही परंतु आकाश और प्रकाश से आरंभ किया है। इसका अर्थ यह है कि पंचमहाभूत में से एक भी तत्व अशांत होगा तो अन्य चार को अवश्य विक्षिप्त कर देगा। अन्य तत्वों को भी हानि पहुंचेगी। इसलिए ऋषि आकाश के देव, प्रकाश के देव और अंतरिक्ष में बसे हुए देव अर्थात् न दिखाई देने वाले देवों और जीवों के लिए भी शांति की प्रार्थना करते हैं ताकि पृथ्वी पर उसका हकारात्मक असर आए।

दोस्तो, आकाश और पृथ्वी अलग होने पर भी अलग नहीं हैं। वह केवल क्षितिज पर एक दिखाई देते हैं, जिन्हें लोग भ्रामक कहते हैं। परंतु ऐसा नहीं है। प्रत्येक पदार्थ और खास करके मनुष्य में आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु और जल सब परस्पर विरोधी गुणों वाले होने पर भी चमत्कारिक रूप से संकलित होकर सहअस्तित्व धारण करके जीवों के अस्तित्व को टिकाए रखते हैं। अगर एक तत्व विक्षिप्त होगा तो पूरी मनुष्यता और जीव सृष्टि छोटे या बड़े स्तर पर अशांत हो सकती है। मैं कहती हूँ कि प्रार्थना में बहुत शक्ति है। आधुनिक विज्ञान भी अब प्रेयर-थेरापी का स्वीकार करने लगा है, क्योंकि वह सत्य है और सत्य का

विरोध हो ही नहीं सकता। विश्व में अगर कोई सबसे बलवान है और परिणामदायक है तो वह है शुभ संकल्प।

प्यारे साधको!

आपको पता है! अनेक प्रकार की अग्नि है, अनेक प्रकार की वायु है, अनेक अनेक ग्रह मंडल हैं और मैं तो यह भी कहती हूँ कि अनेक पृथ्वियाँ भी होंगी। विज्ञान सबकुछ नहीं ढूँढ़ पाया है यह बात अलग है। परंतु नासा और इसरो जैसी अनेक संस्थाओं द्वारा अंतरिक्ष में खोज जारी है। नए नए टापूर्, ग्रह और जहाँ जीवन संभव हो ऐसी जगह मिल रही हैं।

दोस्तो, आकाश भी अनेक हैं। पृथ्वी पर उड़न तस्तरियों के आने की बात आपने सुनी ही होगी। कुछ सूक्ष्म दर्शक यंत्रों ने ऐसी घटनाओं को केमरे में पकड़ लिया है। इससे सिद्ध होता है कि जो हमारे देखने में ना आए ऐसे स्थान भी हैं और वहाँ भी जीवन है। पुराणों में सात आसमान और सात पाताल की बात कही है। वह कल्पना नहीं है। हाँ मनुष्य अभी तक उसे पूरा पूरा जान नहीं पाया अथवा वहाँ तक पहुँच नहीं पाया यह बात अलग है। वह जब सबकुछ जान लेगा तब फिर से मंगल और चंद्र की भांति हमारा संपर्क देव लोग, नागलोक, यक्षलोक, किन्नरलोक और गांधर्वलोक से हो जाएगा।

प्यारे साधको!

मैं कहना यह चाहती हूँ कि ब्रह्मांड के किसी भी कौने में उत्पन्न हुई अशांति पूरे ब्रह्मांड की लय को खंडित करती है। जैसे कि सूरज का पृथ्वी के निकट आने से ज्यादा गर्मी लगती है और मनुष्य परेशान हो जाता है। समुद्र में वड़वानल से आग लगने से समुद्र के जीवों के उपरांत पृथ्वी और

आकाश को भी नुकसान पहुंचता है। जंगल में दावानल के कारण आग लगने से वनस्पति सृष्टि, पशु-पक्षी सृष्टि, जंतु सृष्टि उपरांत मानव सृष्टि भी अशांत हो सकती है।

उपनिषद्कार की परकाया प्रवेश की क्षमता अपार है। यह एक आध्यात्मिक प्रवेश है। वह वनस्पति को जड़ नहीं परंतु जीवंत मानते हैं। डॉ. जगदीशचंद्र बोस ने तो कुछ वर्ष पहले बताया कि वनस्पति सजीव है परंतु भारत के ऋषि ने तो लाखों वर्ष पहले मनुष्यता के सामने इस सत्य को प्रगट किया था। इसीलिए ऋषि पेड़-पौधों के लिए भी प्रार्थना करते हैं। वनस्पतियों में शांति चाहते हैं। क्योंकि वन में दव लगने से औषधियाँ नष्ट हो जाती हैं। मनुष्य को पुष्ट करने वाले फल-फूल और कंद-मूलों का नाश होता है। कुछ रस औषधि से जहरीला गैस उत्पन्न होकर समग्र जीवसृष्टि को नुकसान पहुंचा सकता है। उस जहरीली वायु का बादल बनकर बरसने से विशयुक्त पानी बरस सकता है और जीव सृष्टि का नुकसान हो सकता है। इसलिए उपनिषद्कार कहता है कि स्वयं परब्रह्म से लेकर समग्र सृष्टि में शांति प्रसरती रहे। शांति विस्तरित होती रहे।

दोस्तो, आपने उल्कापात की बातें सुनी होंगी। आज भी कभी कभी कहीं कहीं उल्काएं गिरती हैं। दोस्तो, घर के एक छोटे से कौने में लगी हुई आग पूरे घर को कब लपेट में ले ले यह हम नहीं कह सकते। ज्ञानियों की दृष्टि से यह ब्रह्मांड एक महानिवास है। उसमें परब्रह्म से लेकर कीट-पतंग तक सबका वास है। सबकी शांति के लिए जड़-चेतन सब शांत रहें यह अनिवार्य है। सबकी शांति के लिए एक-दूसरे का परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार अनिवार्य है। ऐसी शांति एक प्रार्थनापूर्ण हृदय ही फैला सकता है। परंतु अफसोस की बात यह है कि शांति मंत्र की प्रार्थना केवल

शाब्दिक रह गई। बड़ी बड़ी शांति सभाओं में शिष्ट और सभ्य दिखने के लिए कुछ लोगों ने इस मंत्र को रट लिया है। और किसी भी कार्यक्रम के आरंभ या अंत में मंत्र का समूहगान कर देते हैं। परंतु इससे क्या?

शांति के मंत्र रट लेने से या शांति की बातें करने से शांति प्रस्थापित या विकसित नहीं हो सकती। शांति के लिए पहले स्वयं के हृदय को शांत करना पड़ता है। स्वयं की शांति हर हाल में बनाए रखनी पड़ती है। खुद का व्यवहार प्रेमपूर्ण करना पड़ता है।

दोस्तो, आपके द्वारा दूसरों को शांति कब मिलेगी? वह तभी मिलेगी जब आपका शांति में प्रवेश हो गया हो, जब आपका हृदय निर्मल हो गया हो, स्वार्थमुक्त हो गया हो, राग-द्वेष से मुक्त हो गया हो।

प्यारे साधको!

शांति किसी हठयोग के तरीके से प्राप्त करने की चीज़ नहीं है। योग वशिष्ठ में मन को शांत कैसे किया जाता है, उसकी रीति बताई है। ब्रह्मनिष्ठ वशिष्ठ योगी राम को कहते हैं कि ज्ञान के द्वारा चित्त को शांत करना यह पलक के मूंदने से और फूल को मसलने से भी आसान है। हे राम! मन की सत्ता अज्ञान के कारण है और इसी मन के कारण ही अशांतियाँ हैं।

योग वशिष्ठ शांति के लिए ज्ञान प्राप्ति, संकल्प-विकल्प का त्याग, भोगों से विरक्ति, इच्छा त्याग, संग त्याग, कर्ता भाव का त्याग, सर्व त्याग, समाधि का अभ्यास और लय क्रिया आदि दस उपाय बताते हैं।

प्यारे साधको!

मुझे ज्यादा शास्त्रीयता में नहीं उतना है परंतु इतना ही कहना है कि मुझसे पहले के ध्यानियों ने और योगियों ने भी शांति के लिए

आध्यात्मिकता और सत्य समझ को मार्ग माना है। मैं ज्यादा पांडित्य की बातें नहीं करना चाहती हूँ परंतु जिसे आप आसानी से समझ सको ऐसी भाषा में आपको शांति की वास्तविकता और अनिवार्यता समझाना है।

दोस्तो, पांडित्य गलत नहीं है। वह तो सर्वोत्तम है परंतु कोरा पांडित्य गलत है। कोरा पांडित्य का अर्थ है—केवल बड़ी बड़ी बातें करना, उसमें जीना नहीं। केवल बातों से कुछ नहीं होता। आपने एक दृष्टांत सुना होगा –

एक पंडित जी रोज सभा में उपदेश करते थे कि चातुर्मास (वर्षा काल) में बैंगन नहीं खाना चाहिए क्योंकि उसमें कीड़े लग जाते हैं, हिंसा होती है और स्वास्थ्य बिगड़ता है। उसी दौरान कोई पोथी पर आटा, घी, दाल, चावल के साथ बैंगन भी लाए। सुंदर बैंगन को देखकर पंडित की लार टपकने लगी और कथा पूरी होने के साथ बैंगन को पोथी के साथ लपेट लिया और पोथी बांध ली। धर्म ग्रंथ के साथ बैंगन भी चले पंडित के घर। दोस्तो, ऐसे ही अशांति भी चलती रहती है, शांति के नाम से और शांति के लिबास में। खैर! ऐसी शांति की बातों का क्या अर्थ? ऐसी खोखली और दंभपूर्ण बातें विश्व में कभी शांति प्रस्थापित नहीं कर सकती। शांति अभियान चलाने वालों को मैंने विशेष अशांत देखा है। चिड़चिड़ा देखा है, आग्रही और हठाग्रही देखा है। शांति किसी भी प्रकार के आग्रह से स्थापित नहीं होगी। शांति की हठ पकड़ने से तो अशांति बढ़ती है और हिंसा और भड़क उठती है। इतिहास को पढ़ने से इस बात के सबुत मिलेंगे। दोस्तो, शांति किसी एक व्यक्ति के द्वारा आ जाए यह भी संभव नहीं है। वैश्विक शांति के लिए तो पूरे विश्व के लोगों का शांति चाहना अनिवार्य है। पूरा विश्व शांति से सोचो शांति से बोलें और शांति से

व्यवहार करे, यह जरूरी है। उपनिषद् के ऋषि का यही उद्देश्य है। ध्यान और शांति दोनों एक दूसरे का पर्याय है। मैं कहती हूँ कि दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। मनुष्य जब तक ध्यान में नहीं उतरेगा तब तक शांति में प्रवेश नहीं कर सकेगा।

प्यारे साधको!

उपनिषद् हमेशा बहुवचन में बात करते हैं। उसकी बातें व्यक्ति लक्ष्मी नहीं परंतु समष्टिलक्ष्मी हैं। वह बातें नहीं परंतु एक निश्चय है। कुछ लोग केवल बातें करते हैं परंतु दूसरों की शांति से अशांत और दूसरों के सुख से दुःखी हो जाते हैं। ऐसे आधे अधूरे और नासमझ प्राणियों से विश्वशांति कैसे संभव होगी? ऐसे लोगों के लिए मैंने तजुर्बा नाम के एक कविता संग्रह में लिखा है –

हूँ बहारें यारो बारह मास की,
खौफ़ ना पतझड़ का अब मेरे भीतर॥

चाँद हूँ बढ़ता ही जाता हर घड़ी,
खिल गया हूँ अंधेरो को पार कर॥

ऐसा हूँ सूरज अंधेरा खो गया,
आना जाना मिट गया अब धरती पर॥

जिंदगी हूँ, देती हूँ मैं जिंदगी।
मौत का साया नहीं मरे ऊपर॥

मांगती कुछ भी नहीं मालिक से।
बंदगी में तब तो आया है असर॥

अब कोई ना बंदगी सिज़दा नमाज़।
उठ गई अल्लाह मैं सबसे ऊपर॥

मिट गया मेरा सनम नामो निशां।
 देर से आया तू मालिक मेरे दर॥
 रह सके तो तू भले रह ले यहाँ।
 उड़ गई मैं तो तूने बक्षे थे पर॥
 अब अकेला तू ही तू और तू ही तू।
 मैं तो मस्ती से फिरूँ चाहूँ जिधर॥

प्यारे साधको!

शांति की उपासना करना है तो सही अर्थ में ऐसे शांतिदूत बनो कि आपके रोम रोम में से शांति उठे। आपकी तरंगों से शांति फैले। आपकी वाणी से लोग शांति को प्राप्त करें। आपके व्यवहार से शांति बोल उठे। आपके वर्तन से शांति महक उठे और ध्यान से शांति फैलती रहे – ऐसी संकल्पना के साथ उतरो इस शांति मंत्र ध्यान में।



धरणा - 90

वेदोक्त मंत्र ध्यान

ध्यान सूक्ति - 90

ध्यान से असत से सत में जाओ, अंधकार से प्रकाश में आओ।
मृत्यु से भी अमरता पाओ, वेद विचार से मुक्ति ध्याओ॥

ध्यान विधि - 90

ध्यान वैं द्वावा
अवास्तविक सै वास्तविक
में, अज्ञान सै ज्ञान में
तथा भय सै निभयता में
प्रवेश कब लो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 111

सैं

कड़ो वर्ष पहले
 ऋषि को लगा होगा कि
 मनुष्यता को अभी से जगाना
 पड़ेगा। उसकी गलत सोच
 और आदतों के प्रति अभी से
 इशारा करना पड़ेगा। इसीलिए
 कहा - असतो मा सद्गमय।
 तभी भी मनुष्य को सत्य जीवन
 का बोध करना जरूरी लगा
 होगा। सत्य बोध के अभाव में
 मनुष्य दुःख, पीड़ा और राग-
 द्वेषादि का शिकार बनता होगा।
 दोस्तो, मनुष्य जब जीवन के
 परम सत्य को जान लेता है
 तब वह असत्य में से बाहर
 आ जाता है। असत्य में से
 बाहर आना वही सत्य की
 साधना है। ऐसी साधना से
 वह निर्भय हो जाता है।

ॐ असतो मा सद्गमया।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मा मृतं गमय।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

अर्थ :- असत् से सत में प्रवेश हो, अंधकार से प्रकाश में प्रवेश हो, मृत्यु से अमृतावस्था में प्रवेश हो। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्यारे साधको!

इस मंत्र में किसी अज्ञात शक्ति से असत्त्यों में से सत्य में ले जाने की प्रार्थना है। तीन चरण में मंत्र पूरा होता है। परंतु ये तीन चरण तीनों लोको को छू लेते हैं। आसमान की बुलंदी और पाताल की गहराईयों से भी यह मंत्र बुलंद और गहरा है। यह मंत्र आपके लिए शाब्दिक न रहे परंतु जब ध्यान बन जाए तब आप एक उच्चतम अवस्था में होंगे और फिर यह भाव आपके द्वारा सत्य बन जाएगा।

असतो मा सदगमय का अर्थ है – अवास्तविक में से वास्तविक में हमारा प्रवेश हो। दोस्तो यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है। मनुष्य अवास्तविकता में जी रहा है। उसका पूरा जीवन अवास्तविक है। मनुष्य के द्वारा ओढ़ी हुई औपचारिकताओं और ढोंग के कारण वास्तविक जीवन खो गया है।

एक बार एक संत के पास एक चोर आया। संत बहुत दिनों से मौन में थे परंतु चोर प्रमाणिक था, सच्चा था, प्रेमपूर्ण था। उसे भरोसा था कि संत मेरे साथ बात करेंगे। उसके मन में प्रश्न भी उठ रहा था कि संत अचानक मौन में क्यों चले गए? चोर ने संत को प्रणाम करके पूछा कि महाराज मैं एक चोर हूँ, क्या आप मेरे साथ बात करेंगे? संत ने कहा-हाँ। चोर ने पूछा – औरों से क्यों नहीं करते? संत ने कहा कि तू एक वास्तविक चेहरा लेकर मेरे पास आया है और मैंने सारे नकाबों को उतारकर एक वास्तविक जीवन पाया है। इस वास्तविकता को पाने के लिए मुझे लंबी मज़ल काटनी पड़ी है। अब मैं नहीं चाहता हूँ कि किसी नकाबपोश आदमी से बात करूँ। मेरी खोज सत्य की थी जो आज भी जारी है। मेरे पास आने वाले करीब करीब सभी चोर होते हैं परंतु साहूकारी और भक्ति का नकाब चढ़ाकर आते हैं इसलिए उनसे मैं बात नहीं कर सकता हूँ। मैंने तय किया है कि मेरे पास अपनी वास्तविकता के साथ जो आएगा, उसके साथ ही मेरा संवाद संभव होगा फिर वह वास्तविकता कितनी भी कटु क्यों न हो! परंतु मैं वास्तविक की उपासना ही करूँगा। मैं चाहता हूँ – असतो मा सदगमय।

प्यारे साधको!

लोग अवास्तविक जीवन जीने के आदि हो गए हैं। झूठ उसका स्वभाव हो गया है। ऐसा आज ही हो रहा है ऐसा नहीं है। किसी मनीषि

को जब यह मंत्र उतरा तब भी ऐसा होगा। अगर असत का अस्तित्व ही नहीं होता तो सत की बात कहाँ से आती? असत्य के कारण सत्य की महिमा है। अवास्तविकता की वजह से वास्तविकता का महत्व है। झूठ का अस्तित्व है इसलिए सत्य की बातें करनी पड़ती हैं। अगर दुनिया में से झूठ मिट जाए फिर तो सत ही सत बचेगा। फिर सत्य के गाने गाने की जरूरत नहीं रहेगी।

सैंकड़ों वर्ष पहले ऋषि को लगा होगा कि मनुष्यता को अभी से जगाना पड़ेगा। उसकी गलत सोच और आदतों के प्रति अभी से इशारा करना पड़ेगा। इसीलिए कहा – असतो मा सद्गमय। तभी भी मनुष्य को सत्य जीवन का बोध करना जरूरी लगा होगा। सत्य बोध के अभाव में मनुष्य दुःख, पीड़ा और राग-द्वेषादि का शिकार बनता होगा। दोस्तो, मनुष्य जब जीवन के परम सत्य को जान लेता है तब वह असत्य में से बाहर आ जाता है। असत्य में से बाहर आना वही सत्य की साधना है। ऐसी साधना से वह निर्भय हो जाता है।

जीवन के दो छोर पर दो परम सत्य हैं – आनंद और मृत्यु। जो पहले छोर को चूक जाता है उसके लिए दूसरा छोर ही बचता है। दोनों सत्य अपनी अपनी जगह पर हैं। जो आनंद में प्रवेश कर लेता है वह मृत्यु का वरण भी सहज और प्रसन्नता से करता है। जो आनंद को चूक जाता है उसे मरना पड़ता है। उसे मृत्यु दुःख देता है। आशा जीवन है, निराशा मृत्यु। आनंद जीवन है, शोक मृत्यु। जीवन वास्तविकता है, मृत्यु केवल पंचमहाभूतों का विघटन।

प्यारे साधको!

असत में से सत में प्रवेश होने का अर्थ, जो वास्तविक है उसका स्वीकार और उसमें जीना। मेरी दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन एक वास्तविक जीवन है। क्योंकि आध्यात्मिकता से एक जाग्रतिपूर्ण अवस्था की प्राप्ति होती है और तब सब प्रकार की वास्तविकताओं का स्वीकार स्वाभाविक बन जाता है और असत हट जाता है। आध्यात्मिक जीवन जीने वाला न खुद को धोखा दे सकता है न किसीको ठग सकता है।

आज के समाज का प्राण-प्रश्न यह है कि मनुष्य उठते, बैठते, बोलते, रोते और हंसते सभी क्रियाओं में वास्तविकता खो बैठा है। उसका हिसाब किताब रोबोट जैसा हो गया है। मनुष्य के पास जीवन कम और मेकेनिज्म ज्यादा है। आनंद कम और तनाव ज्यादा है। समय कम और योजनाएं ज्यादा हैं। न लोग वास्तविकता में जी सकते हैं और ना ही वास्तविकता का स्वीकार कर सकते हैं। यहाँ जीवन नहीं जिया जाता है, दंभ जिया जाता है। मैंने ईश्वर को संबोधित करते हुए आज के संदर्भ में कुछ लिखा है।

कहकशा हूँ और ज़मीं पे पाँव है।

कोई लेता है तबाही मोल कर॥

तड़पता दरिया है मेरे वासते।

ऐसी मछली हूँ समझ ले तू अगर॥

‘मोहिनी’ को ना समझ तो ना समझ।

खामखा हर दर पे ना तू फोड़ सर॥

दोस्तो, ये भगवान के लिए या किसी तीर्थंकर, पयगंबर या अवतार के लिए नहीं लिखा है, न ही किसी अज्ञात ईश्वर के लिए लिखा है – यह

एक व्यंजनात्मक भाषा है। यह लिखा है – हीन, हिंसक, और हकार के अभाव में जो लोग निष्ठुर बन चुके हैं ऐसे लोगों के लिए। और ऐसे लोगों के लिए भी लिखा है जो अब नकारात्मकता से थक गए हैं और हकार का मार्ग ढूँढ रहे हैं।

प्यारे साधको!

एक बार फिर से मनुष्यता के कल्याण हेतु ऋषियों की वाणी को आपके सामने एक वास्तविक अर्थ में रख रही हूँ। ऋषि पहले चरण में कहता है – असतो मा सद्गमय। अर्थात् हमारा अनरियल में से रीयल में प्रवेश हो, भ्रम में से सत्य में प्रवेश हो। जिसकी चर्चा हो चुकी है।

फिर दूसरे चरण में कहते हैं – तमसो ज्योतिर्गमय। अंधकार में से प्रकाश में गमन हो।

प्यारे साधको!

जब तक असत है तब तक अंधकार है। सही मंजिल की ओर एक ही सही कदम उठाने से फिर आगे के सारे कदम सही दिशा में ही जाते हैं। परंतु जिस रास्ते पर जा रहे हो उस रास्ते के लिए आप जाग्रत होने चाहिए। कोई रहनुमा मिल जाए तो भले उसका थोड़ा साथ मिल जाए परंतु रहजनों (लुटेरों) से सावधान रहना। अगर सावधान नहीं रहेंगे तो गलत लोगों के संग में सही मंजिल छूट जाएगी। आपके कदम ही गलत दिशा में उठेंगे तो सही मंजिल बेचारी क्या कर पाएगी?

दोस्तो, यहाँ अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़ने की बात है। अज्ञान अंधकार है और ज्ञान प्रकाश। मूर्छा अंधकार है और सजगता प्रकाश। मोह अंधकार है निरासक्ति प्रकाश। माया अंधकार है ब्रह्म प्रकाश। तो चलो ध्यान के द्वारा अंधकार से प्रकाश की ओर गति करें।

ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 117

दोस्तो, मंत्र के अंतिम चरण में ऋषि कहते हैं – मृत्योर्मा अमृतम
गमय। मृत्यु से अमृत की ओर गमन करें।

प्यारे साधको!

जिसको ज्ञान हो गया वह अमर बन गया। योगी भर्तृहरी की कथा में एक अमरफल की कहानी आती है। कथा कुछ ऐसा कहती है कि एक संत ने राजा को कृपा करके एक अमरफल दिया। इस फल के खाने से मनुष्य अमर बन सकता था। राजा पत्नी को प्यार करता था, उसने वह फल पत्नी को दे दिया। रानी किसी अश्वपाल के प्रेम में पागल थी, तो अपना प्रेमी अमर हो जाए ऐसी चाह में रानी ने वह फल अश्वपाल को दे दिया। अश्वपाल एक वैश्या के प्रेम में था उसने फल वैश्या को दे दिया। वैश्या ने सोचा कि मेरा तो सारा जीवन कुकर्म में बीतेगा! मैं अमर होकर क्या करूंगी? महाराज भर्तृहरि प्रजावत्सल और एक धर्मपुरुष हैं, अमर होने के लायक हैं। ऐसा सोचकर वैश्या फल लेकर राजा के पास गई। राजा सोच में पड़ गया कि फल वैश्या के पास कहाँ से आया? उसकी जांच करने पर पता चला कि सारी घटना कैसे घटी। इससे राजा को ज्ञान हो गया। अवास्तविक जगतप्रेम का बोध हो गया; बस, इससे वे संसार से विरत होकर निकल पड़े। वैराग्य में प्रवेश करके वास्तविक रूप से अमर हो गए।

दोस्तो, मेरी दृष्टि से यह अमरफल ज्ञानरूपी फल है। जिसने ज्ञान को पा लिया वह अमर हो गया। उसने संसार की असारता को जान लिया और उसके बंधनों से मुक्त हो गया। मैंने कहीं लिखा है –

जो जिंदा ही मर जाता है

वह नाम अमर कर जाता है
यह बात नहीं कोई आसां
तुम चाहो तो हमारे साथ चलो

प्यारे साधको!

ध्यान से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ध्यान है जीते जी मृत्यु में प्रवेश कर लेने की कला। मृत्यु के पार जाने की कला। अमर हो जाने की कला। बिना ध्यान अमरता में प्रवेश असंभव है। बिना ध्यान अवास्तविकता में से वास्तविकता में प्रवेश असंभव है। बिना ध्यान अंधकार में से प्रकाश में प्रवेश असंभव है। जब आप ध्यान में उतरेंगे तभी इस मंत्र को सार्थक कर पाएंगे और इसका सच्चा अनुभव कर पाएंगे। तभी त्रिविध तापों की शांति होगी।





विभाग - 12

चार महावेद वाक्यों पर आधारित ध्यान विधियाँ



धरणा - 91

प्रज्ञानम् ब्रह्म भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 91

प्रज्ञा ही ब्रह्म जाने साधक, ध्यान धरे ब्रह्म रूप आराधक॥

ध्यान विधि - 91

ध्यान की गहराइयों में
उत्तरगत प्रज्ञा वीर
शुद्धिकरण को उपलब्ध हो
जाओ और ब्रह्मदशा का
अनुभव कर लो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 125

दो

स्तो, आज के मनुष्य के पास सबकुछ है परंतु सभानता का अभाव है। न उसके आनंद में सभानता है न दुःख में। मनुष्य सुख-दुःख दोनों में सभानता से जीना सीख जाए तो सुख-दुःख गौण हो जाएंगे और सभानता केन्द्र में आ जाएगी। परंतु मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता। वह तो यह दिखाना चाहता है कि मैं दुःखी हूँ। दुःख के द्वारा वह अपनी ओर दूसरों का ध्यान खींचना चाहता है। वह यह भी बताना चाहता है कि मैं सुखी हूँ। वह वास्तव में सुखी होना नहीं चाहता। सुखी होने का ढोंग रचाता है और सुख का प्रदर्शन करना चाहता है। दुनियां में सुखी दिखने के लिए वह कुछ न कुछ ऐसा करता रहता है कि किसी भी तरह लोगों के मन में हावी रहे, केन्द्र में बना रहे। यह एक प्रकार की अभानता है।

प्यारे साधको!

बार बार मैं ध्यान के प्रति इतना जोर क्यों देती हूँ? मैं क्यों चाहती हूँ कि ध्यान वैश्विक बने। मैं क्यों चाहती हूँ कि ध्यान आपके जीवनक्रम का एक अनिवार्य हिस्सा बने? क्यों चाहती रहती हूँ आपको ध्यान के बारे में कुछ न कुछ बताना, लिखना, बोलना? वडोदरा के ध्यान मंदिर में ध्यान शिबिर लगातार क्यों लगी रहती हैं? ध्यान के लिए आपको इतना प्रोत्साहित क्यों कर रही हूँ? क्योंकि मैं चाहती हूँ कि मनुष्य सभानता के साथ जीना सीखे।

दोस्तो, आज के मनुष्य के पास सबकुछ है परंतु सभानता का अभाव है। न उसके आनंद में सभानता है न दुःख में। मनुष्य सुख-दुःख दोनों में सभानता से जीना सीख जाए तो सुख-दुःख गौण हो जाएंगे और सभानता केन्द्र में आ जाएगी। परंतु मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता। वह तो यह दिखाना चाहता है कि मैं दुःखी हूँ। दुःख के द्वारा वह अपनी ओर दूसरों का ध्यान खींचना चाहता है। वह यह भी बताना चाहता है कि मैं सुखी हूँ। वह वास्तव में सुखी होना नहीं चाहता। सुखी होने का ढोंग

रचाता है और सुख का प्रदर्शन करना चाहता है। दुनियां में सुखी दिखने के लिए वह कुछ न कुछ ऐसा करता रहता है कि किसी भी तरह लोगों के मन में हावी रहे, केन्द्र में बना रहे। यह एक प्रकार की अभानता है।

दोस्तो, जब तक केन्द्र में व्यक्ति है तब तक संसार है। जिस क्षण केन्द्र में सभानता है तब मुक्ति है।

लाखों लोग अभानता में जी रहे हैं। ये दो पांच लोगों का प्रश्न नहीं है। पूरी पूरी सोसायटी और दुनिया अभान है। अलग अलग रूप से सब लोग एक ही प्रकार की प्रवृत्ति करने में लगे हैं। किसी फिलसुफर ने समाज के सात पाप बताए हैं। वैसे तो उन सातों के केन्द्र में कहीं न कहीं अभानता दिखाई दे रही है। परंतु एक जगह पर बड़ी स्पष्ट बात की है।

“pleasure without conciousness”

सभानताहीन आनंद को समाज का सातवां पाप माना गया है। परंपरागत धर्मों में की हुई पाप की व्याख्याओं से यह व्याख्या ज़रा हटकर है। दोस्तो, अभानता में पाया हुआ आनंद शायद आपके लिए आनंद हो सकता है परंतु जरूरी नहीं कि दूसरों के लिए भी वह आनंद की बात हो। अभानता में लिया हुआ आनंद किसी को पीड़ा भी पहुंचा सकता है। किसीके दिल को दुःखी भी कर सकता है। ऐसा आनंद विकृत आनंद है, राक्षसी आनंद है, एक प्रकार का पागलपन है। ऐसे अभान लोगों को जगाने के लिए क्या करें? तब वेद के ऋषि ने एक महावाक्य दिया – प्रज्ञानम् ब्रह्म।

प्यारे साधको!

प्रज्ञा का अर्थ क्या है? सामान्य लोग प्रज्ञा का अर्थ बुद्धि करते हैं परंतु यहाँ प्रज्ञा का अर्थ है सभानता, प्योर कोन्शियसनेस। उपनिषद्

कहता है कि सभानता ही ब्रह्म है, वही परमात्मा है, वही सुप्रीम पावर है। बात भी सही है। अभान अवस्था में मनुष्य गलत निर्णय लेता है, गलत काम करता है, गलत सोचता है। ऐसी बुद्धि को ब्रह्म कैसे कह सकेंगे? ब्रह्म तो सर्व साक्षी है। ब्रह्म दशा एक प्रबुद्धावस्था है। बुद्धावस्था में बुद्धि छोटी पड़ जाती है। प्रबुद्धत्व के प्रवाह में सारी अशुद्धियाँ धुल जाती हैं।

दोस्तो, कहने वालों ने जगत को मिथ्या कहा परंतु ब्रह्म को किसीने ने मिथ्या नहीं कहा। ब्रह्म सत्य है। सत्य मिथ्यात्व में नहीं जी सकता। और मिथ्या के साथ में नहीं जी सकता। दोनों का दायरा भिन्न भिन्न है। वैसे तो ब्रह्म प्रत्येक दायरे के बाहर है। सत्य को समझने के लिए स्थूल भाषा ज्यादा मदद नहीं कर सकती। फिर भी हमको भाषा के द्वारा ही सत्य बातों को समझाने की कोशिश करनी पड़ती है। यह एक सबसे बड़ी मजबूरी है। जितनी भी भाषा बनी हैं उन सारी भाषाओं के द्वारा सत्य को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। परंतु सत्य के लिए अगर कोई भाषा है तो वह एक अनुभूति की भाषा। सत्य की भाषा सत्य ही है। सत्य की आंख से सत्य देखा जा सकता है। जब तक आप सत्य की आंख नहीं पाएंगे, एक विशुद्ध दृष्टि नहीं पाएंगे तब तक सत्य के बारे में कही गई सारी बातें मिथ्या हैं, अर्थहीन हैं।

प्यारे साधको!

सत्य न तो पूर्ण रूप से बोला जा सकता है, न लिखा जा सकता है, वह केवस समझा जा सकता है। आप जिसे व्यवहार में सत्य कहते हो, वे सत्य के बारे में होती हुई बातें हैं, परम सत्य नहीं। परम सत्य तो केवल समझा जा सकता है। उसमें जिया जा सकता है; उसे व्यक्त करने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि वह ब्रह्म है। वह व्यक्त होते हुए भी अज्ञात है।

इसीलिए हमारे मनीषियों ने कहा कि वह शब्दों के पार है, समय से पार है, नाम-गुण-रूप से परे है। सर्वशक्तिमान होने पर भी सर्वउपाधियों से मुक्त, नित्य, निरंजन, निर्मल, निष्क्रिय, शांत, एक और अद्वितीय है। श्रुतियों द्वारा उसके लिए नेति नेति कहने के बाद भी उसे जानने योग्य कहा। परंतु कैसे जानेंगे? वह तो शब्दों के पार है। इसलिए उसे आंतरिक समझ के द्वारा ही जाना जा सकता है। वेद का ऋषि कहता है कि वह आंतरिक समझ ही प्रज्ञा है और प्रज्ञा ही ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्म को ब्रह्म के द्वारा ही जाना जा सकता है।

शाब्दिक ज्ञान द्वारा उस ब्रह्म का वर्णन या उसे समझना संभव नहीं है। दोस्तो, प्रज्ञा अर्थात् सभानता को ही उपनिषद् का ऋषि जगत बीजरूप ब्रह्मांड में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला विराट, विभु, प्रजापति, देवता और अनेक नाम रूप धारण करने वाले होने के कारण सर्वव्यापी भी कहते हैं। इस ब्रह्म की मनीषियों ने अनेक प्रकार से कल्पना की है। परंतु वास्तव में प्रज्ञा तत्व की मौजूदगी के कारण ही इस जगत की संरचना और सारी संकल्पनाएं हो रही हैं। अगर उस तत्व का बोध नहीं जगता तो संसार का विस्तार कैसे होता? प्रज्ञा को हम ब्रह्म की आंख भी कह सकते हैं उसे परमात्मा की दृष्टि कह सकते हैं, उसे देवी दृष्टि भी कह सकते हैं। वह परमात्मा सभानता के साथ सबकुछ साक्षीभाव से देख भी रहे हैं और कर भी रहे हैं। जो सबके शरीर में प्राण और प्रज्ञात्मा के रूप में स्थिर हैं।

उपनिषद्कार इस महावाक्य को समझाने का प्रयत्न करता हुआ कहता है कि अनेक जलपात्र पड़े हों तो उनमें विविध प्रतिबिंब पड़ते हैं।

उसी प्रकार यह एक ही प्राण (प्रज्ञात्मा) विविध स्वरूपों में प्रतिबिंबित हो रहा है।

यह ब्रह्म कौन कौन है? ऐसा प्रश्न उठाकर उसके जवाब में उपनिषद्कार कहता है कि वह अंडज (अंडे से उत्पन्न होने वाले), स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होने वाले), जरायुज (मनुष्य आदि) और उद्बीज (बीज से उत्पन्न होने वाले वृक्षादि) उपरांत स्थावर जंगम सभी में उसका वास है।

शायद संतों ने इसीलिए उस ब्रह्म का कण कण में वास माना है। संत तुलसी कहते हैं कि -

हित अनहित पशु पच्छिउ जाना

इसका अर्थ स्पष्ट होता है कि वह ब्रह्म प्रज्ञा के रूप में पशु-पक्षी में भी विराजित है और उस सभानता के कारण ही उन्हें अपने हित और अहित का पता चलता है। खैर! मुझे आपको ध्यान की ओर ले जाना है। मैंने प्रज्ञानम् ब्रह्म - इस महावाक्य को समझने के लिए कुछ बातें बताईं परंतु वास्तव में तो वह अंतरदृष्टि से ही समझी जा सकती है। मैं बार बार कहती हूँ कि यह प्रज्ञा अनुभूति का विषय है। उस पर मैं कितना भी बोलूँ? कितना भी लिखूँ? परंतु सत्य रूपी प्रज्ञा शब्दों से परे है।

दोस्तो! जागो, सभान बनो। जो कुछ भी करो सभानता से करो। जागा हुआ मनुष्य ही समझ सकता है कि सजगता और सभानता क्या है? मैं फिर से एक बार कहूँगी कि ज्यादा शब्दों में मत पड़ना। प्रज्ञा का अर्थ आप शब्दकोष में ढूँढने बैठेंगे तो बुद्धि ही मिलेगा परंतु वास्तव में प्रज्ञा का अर्थ है आत्मजाग्रति। वही ब्रह्म है और इसका अनुभव ध्यान के द्वारा शीघ्र ही हो जाएगा। दुनिया बे-ध्यान है, अभानता में जा रही है

इसलिए कुछ लोग ब्रह्म की बातों से घबरा जाते हैं और कुछ लोग हंस देते हैं। मैं कहती हूँ कि उतरो ध्यान में। ध्यान के द्वारा अज्ञान के पार चले जाइए। फिर प्रज्ञानम् ब्रह्म का अनुभव कर लो जो सर्वव्यापी है।



धरणा - 92

अयमात्मा ब्रह्म भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 92

निज आत्मा ही ब्रह्म रूप जानी, जो ध्यावे बने उत्तम ज्ञानी॥

ध्यान विधि - 92

ध्यान में उतारकर
“अपनी आत्मा ही ब्रह्म
है” - इस सत्य का
अनुभव कर लो।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 135

उपनिषद् का ऋषि वास्तव में आपको आत्मा के परम सत्य रूप को समझाकर एक महान धारणा दे रहे हैं। ताकि आप उसके प्रति लक्ष्य देकर उसे जानो, पहचानो। वह ब्रह्म है तो आपका अस्तित्व है, आपकी सफलताएं हैं, नाम, दाम, शौहरत सबके पीछे वही है। परंतु उसके अनुभव के लिए मनुष्य को एक विशेष अवस्था तक पहुंचना पड़ता है। उस अवस्था तक पहुंचने का माध्यम है - ध्यान।

प्यारे साधको!

हर मनुष्य की भाषा अलग होती है, सोच अलग होती है। तो मनीषियों की भाषा और सोच अलग होना स्वाभाविक है क्योंकि उनके पास तो एक चिंतनशील मानस उपरांत साधनाशील जीवन होता है। अपने अपने अनुभव में जो सत्य पाया हुआ होता है वह सब अपने अपने शब्दों में मनुष्यता को जगाने के लिए शास्त्र के रूप में हमारे सामने रखते हैं। परंतु वह सत्य अंतरानुभव से ही समझ में आते हैं क्यों? ध्यान के द्वारा जल्दी आते हैं, क्यों?

क्योंकि ध्यानावस्था में मनुष्य की चेतना असत से मुड़कर सत की ओर बहने लगती है। संसार से मुड़कर परमात्मा की ओर बहने लगती है। कर्म से मुड़कर अकर्म की ओर बहती है। ऐसी क्षणों में प्राप्त होने वाली शांति के गर्भ से सभानता का जन्म होता है। अशांत मनुष्य लगभग सभान नहीं होता।

मैंने कैदियों की मानसिकता जानने के लिए एक बार जेल की मुलाकात ली थी। कुछ लोगों से संवाद भी किया था। उनमें से दस में से

नो का कहना था कि उनसे जो भी गुनाह हो गए वह आवेश और क्रोध में हुआ था।

दोस्तो! हत्या, आत्महत्या, बलात्कार, गबन आदि काम, क्रोध और मोह का परिणाम हैं। काम, क्रोध और मोह ग्रस्त मानस आवेश को जन्म देता है। आवेश आत्मज्ञान को ढांक देता है। बादल बहुत छोटा होने पर भी जिस तरह विशाल सूरज को क्षणभर के लिए ढांकने में सफल हो जाता है वैसे ही आवेश ब्रह्मतेज को ढांक देता है।

ध्यान मनुष्य के मन और शरीर के प्रत्येक आवेश को शांत कर देता है। शांत अवस्था में चित्त आत्मतत्त्व की निकटता का अनुभव करता है और तब ध्यान में अचानक एक ऐसी क्षण आती है कि जहाँ अयमात्मा ब्रह्म का बोध होता है। अर्थात् यह आत्मा ही ब्रह्म है जिसका मैं साक्षात्कार कर रहा हूँ।

उपनिषद्कार को ऐसा बोध जग गया तब उसने कह दिया कि अयमात्मा ब्रह्म। क्योंकि उसने अनुभव किया कि सर्वत्र आत्मा की ही सत्ता है।

अथर्ववेदी मांडुक्योपनिषद् कहता है कि संपूर्ण जीवों में एक ही आत्मा स्थित है और एक ही आत्मा में संपूर्ण सृष्टि का साक्षात्कार हो सकेगा – दोस्तो! यह बड़ा प्यारा वचन है। ये अद्वैतानुभूति की बात है। जहाँ दूसरा मिट जाता है। एक में ही सबका अनुभव होता है।

प्यारे साधको!

ऐसे आत्मा को जाग्रत अवस्था में वैश्वानर कहते हैं। उपनिषद् में आत्मपुरुष की अर्थात् वैश्वानर की कल्पना की गई है। जिसमें संपूर्ण प्रकाशयुक्त उस आत्मपुरुष का सर है, सूर्य नेत्र, वायु प्राण, आकाश

मध्यशरीर, अन्न का कारणरूप जल उदर का निम्न भाग और पृथ्वी चरण तथा अग्नि मुख है। इस प्रकार उस आत्मारूपी विराट पुरुष के साथ अंग, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये उन्नीस मुख हैं।

प्यारे साधको!

यह हजारों वर्षों के पहले की भाषा है। परंतु केवल कल्पना नहीं है। यह एक वास्तविकता है। आत्मशक्ति का विराट रूप समझाने के लिए ऋषि को ऐसी भाषा का उपयोग करना अनिवार्य था। आत्मशक्ति की सर्वोपरिता और विशिष्ट क्षमताओं को समझाने के लिए यह सब कहना पड़ा। उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह आत्मा हमारे शरीर का आश्रय करके उसमें सूक्ष्म रूप से रोम रोम में बिराजित है। परंतु आज के जिस्मपरस्त आदमी के पास उस विराटता या सूक्ष्मता का दर्शन करने का समय कहाँ है?

उपनिषद् का ऋषि वास्तव में आपको आत्मा के परम सत्य रूप को समझाकर एक महान धारणा दे रहे हैं। ताकि आप उसके प्रति लक्ष्य देकर उसे जानो, पहचानो। वह ब्रह्म है तो आपका अस्तित्व है, आपकी सफलताएं हैं, नाम, दाम, शौहरत सबके पीछे वही है। परंतु उसके अनुभव के लिए मनुष्य को एक विशेष अवस्था तक पहुंचना पड़ता है। उस अवस्था तक पहुंचने का माध्यम है – ध्यान।

वेद मनुष्य की चार अवस्थाएं बताते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तूया। इन चारों अवस्थाओं में आत्मतत्त्व सर्वसाक्षी होने पर भी सक्रिय रहता है। इसी कारण जीव और जगत की महिमा और सक्रियता है। इसीलिए उपनिषद्कार कहते हैं कि यह आत्मा ही ब्रह्म है। उसकी

मौजूदगी के बिना केवल मेरा या आपका नहीं परंतु समग्र ब्रह्मांड का जीवंत रहना असंभव है।

प्यारे साधको!

तीन अवस्थाओं को तो आप जानते हैं। चौथी अवस्था को तूर्या अवस्था कहा है। इस तूर्या अवस्था और समाधि अवस्था में कोई भेद नहीं है। यह आत्मा ही ब्रह्म है – ऐसी दृढ़ धारणा के साथ स्वचेतना में स्थित ब्रह्म पर ॐ मंत्र के साथ अथवा गहन मौन में किया हुआ चित्त का लय ध्यान है। ध्यान का स्थिर हो जाना आपको तूर्या अवस्था में ले जाकर उस आत्म तत्त्व की परम अनुभूति कराते हैं। वैसे तो यह अनुभूति भीतर प्रतिपल हो रही है परंतु आपका उसके प्रति लक्ष्य नहीं है। आज का मनुष्य मशीन की भांति जी रहा है। परंतु ध्यान में उतने से आप पूर्ण जीवंतता का अनुभव करेंगे। शांत और स्थिर बैठते ही आपको पता चलेगा कि आप कितने प्राणवान, प्रसन्न और प्रफुल्लित हो।

दोस्तो! ऐसी अनुभूति करने के अनेक अनेक रास्ते हैं। करीब करीब उन सारे रास्तों को मैंने विविध ध्यान विधियों के रूप में इन ग्रंथों में समाविष्ट कर दिया है।

प्यारे साधको!

दृढ़ भाव से, शुद्ध आसन पर बैठकर अथवा चलते फिरते हृदय में धारणा बनाए रखो कि यह आत्मा ब्रह्म है। एक दिन अचानक आप केवल ब्रह्म की अनुभूति करेंगे और सारे आवरण गिर जाएंगे अर्थात् शरीर आत्मा का मंदिर बनकर भले रहे परंतु आवरण रूप अर्थात् बाधा रूप नहीं रहेगा। एक बार ऐसा अनुभव होने के बाद हर स्थान में ब्रह्म दर्शन

होने लगेगा। ऐसी अनुभूतियों के संदर्भ में मेरी ही एक कविता का स्मरण हो रहा है -

कहाँ कहाँ तुझे पाया नहीं ओ सनम
 क्या कहूँ? क्या करूँ? तू बता... तू बता...
 तितली के पंख में, फूलों के रंग में
 दोस्त के संग में, तू मिला... तू मिला...
 भोर की ठंड में, मोर के पंख में,
 उड़ती पतंग में, तू मिला... तू मिला...
 सुबह की धूप में, कोयल की हूक में,
 बंसी की फूँक में, तू मिला... तू मिला...
 कहाँ कहाँ तुझे पाया नहीं ओ सनम
 क्या कहूँ क्या करूँ, तू बता... तू बता...

दोस्तों! कभी कभी साधक सिद्ध अवस्था पर पहुंच जाने के बाद भी खुद को और इस जगत को ब्रह्म रूप देखने के बाद प्रसन्न होने के बावजूद भी बौखला जाता है। अंत में बोध होता है कि मुझे कुछ करना ही नहीं है। जो कुछ भी हो रहा है वह सबकुछ उस ब्रह्म का ही विलास है, उसकी ही लीला है और मैं उस लीला का अंश; यह समझ ही मुक्ति है।





धरणा - 93

तत्त्वमसिभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 93

तत्त्वमसि का भाव करी साधक, सर्व जीव सह ब्रह्म उपासक ॥

ध्यान विधि - 93

ध्यान में डूबकर सर्वरूप
में आत्मदर्शन करके सच्चे
ब्रह्मोपासक बनो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 145

दो

स्तो! शरीर जीवन नहीं है। जीवन तो आत्मा से है। जीतेजी निर्बाध और निर्जीव जैसे बने रहने का क्या अर्थ? आपने यह सब कभी सोचा है? अगर नहीं सोचा है तो अब सोचो। ऐसे तो ये सब सोच के पार की बातें हैं। परंतु पार जाने के पहले की जो तैयारी है, उसे मैं सोच कहती हूँ। पहले सही सोच, फिर सम्यक विचार, फिर सम्यक धारणा, फिर ध्यान और ध्यान से अनुभूतियाँ।

प्यारे साधको!

सामवेदी छांदोग्य उपनिषद् का यह एक महावाक्य है। तत्त्वमसि – यह छोटा सा वाक्य पूरे यजुर्वेद का सार है। चारों वेदों ने मनुष्य को एक एक महावाक्य का उसके मनुष्य होने के नाते एक दिव्य पुरस्कार दिया है। अगर मनुष्य इस पुरस्कार का मूल्य समझ पाए तो।

कहने का हेतु यह है कि वेदों के महावाक्य मनुष्य के लिए ही कल्याणकारी हैं। क्योंकि मनुष्य ही उसे समझ सकता है, उसपर चिंतन कर सकता है, उस पर ध्यान कर सकता है और उसके अनुसार अनुसरण कर सकता है। किसी पशु-पक्षी को तत्त्वमसि के साथ कुछ लेना देना नहीं होता।

तत्त्वमसि का अर्थ वह आत्मा है वही तू है। अर्थात् तू धरती पर तो नई शकल लेकर आया था, एक मांस पिंड के रूप में खास आकार लेकर आया था। जिस दुनिया ने सबसे पहले नर-नारी या नपुंसक नाम से सबसे पहले तुझे जाति का बंधन दिया। इसके अनुसार तेरी पहचान शुरू हुई।

दोस्तो! वैसे तो आपकी शकल-सूरत भी आपकी स्वयं की उपलब्धि नहीं है। वह तो आपको माँ-बाप के रंग-सूत्रों के मिश्रण से मिली है। फिर आपके शरीर की पहचान के लिए दुनियां ने एक विशेष नाम दिया और मानव सर्जित समाज व्यवस्था के लिए जाति-पाति का भेद दिया। इस तरह तू एक विशेष जाति के बंधन में बंधा। उसमें तेरा क्या? तेरी वास्तविकता क्या?

तू सत्य चित्त आनंद रूप
तू जीवन रस का सोता है
जागो साधो गाढ़ नींद से
सपने में सब खोता है।

तू ज्ञान रूप, विज्ञान रूप
और मृत्यु से क्यों डरता है,
तू कल्प वृक्ष को बिसर के घर में
नीम फलों को भरता है।

तू ब्रह्म रूप परब्रह्म रूप
अमृत सागर की बूंद है,
मोहिनी विष रस संग में बिगड़ा
तत्त्व रूप से बुलंद है।

तू निराकार साकार रूप
तू सर्व जगत आधार है,
पागल तू असल घर भूल गया
और निराधार मझधार है।

समरस सदा सम स्वर सदा
सम्यक् ज्ञानी बन सकता है
सद्गुरु की शिक्षा को समझकर
मस्ती में डूब सकता है।

उपनिषद् इतना ही समझाना चाहता है। वास्तव में नाम, रूप, गुण, पद, जाति, पांति, ऊंच, नीच, ज्ञान, अज्ञान ये सब भ्रम हैं। उपनिषद् सारे भ्रम से आपको मुक्त करके कहता है कि तू वही है।

वास्तव में यह महावाक्य छांदोग्य उपनिषद् में आरुणी नाम के एक गुरु द्वारा घोषित किया गया है। गुरु श्वेतकेतु नाम के शिष्य से कहते हैं कि हे श्वेतकेतु! तू वही है जिसे ब्रह्म कहते हैं, जिसे सत्यआत्मा कहते हैं।

शिष्य प्रश्न करता है कि अगर यही सत्य है तो लोग उसे क्यों नहीं जानते? तब गुरु कहते हैं कि लोगों की स्थिति मधु के रस जैसी है। मधुमक्खियाँ अनेक वृक्ष, पुष्पादि से रस इकट्ठा करके लाती हैं परंतु उस रस को बोध नहीं है कि मैं किस वृक्ष का या पुष्प का रस हूँ? इसी तरह मनुष्य की दयनीय स्थिति है। उसे अपने मूल स्रोत का बोध नहीं है। मैंने कहीं लिखा है -

तू ब्रह्म रूप पर ब्रह्म रूप
तू जीवन रस का सोता है
साधक तू असल घर भूल गया
क्यों सपने में सब खोता है।

मनुष्य दृश्यमान जगत को सत्य मान लेता है। परंतु वह वास्तविक नहीं है। मनुष्य का वास्तविक स्रोत तो कुछ और ही है। जिसे ब्रह्म,

चिन्मय, सत, आत्म आदि नामों से ज्ञानी पुरुष जानते हैं परंतु मनुष्य ने इस परम सत्य को बिसरा दिया है। मैंने एक भजन में कहा है –

तू अंतर की आंखें खोल
मनवा मन की आंखे खोल
घर की गठरिया घर में भूला
सपनों के झूलों पर झूला
नींद तेरी टूटे तो मनवा
निज आनंद में डोल
तेरा साहिब तुझ आत्मा है
तू ही तेरा परमात्मा है
जाग जतन करी सबद समझ ले
“मोहिनी” कुछ न बोल ... मनवा
तू अंतर की आंखे खोल
मनवा मन की आंखे खोल

दोस्तो! वेदों के महावाक्य बहुत छोटे-छोटे हैं परंतु वे शब्द सर्वोत्तम और कल्याणकारी हैं। समझने योग्य और जीने योग्य हैं परंतु जो जाग जाता है वही इन महावाक्यों के सत्य में जी सकता है। बाकी तो भीतर भरा हुआ सत्य भीतर ही खो गया है और आदमी बाहर ढूँढ़ रहा है; कैसी विडंबना है?

छांदोग्य उपनिषद् में गुरु शिष्य के सत्संग के दौरान ऋषि आरुणि श्वेतकेतु को बोध जगाते हुए कहते हैं कि गंगा और यमुना बह रही हैं परंतु गंगा या यमुना को अपने बारे में कोई ऐसा बोध नहीं है कि मैं गंगा हूँ या

यमुना। ये तो दुनिया ने नाम दे दिया नदियों की पहचान के लिए, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। वास्तव में गंगा और जमुना केवल एक प्रवाह हैं। कुछ ऐसा ही मनुष्य का भी है। मनुष्य को दुनिया ने एक पहचान दे दी। लोग उसके अनुसार उसे पुकारने लगे परंतु फर्क यह है कि गंगा – यमुना अपने नाम को चिपक कर नहीं बह रही हैं। वे तो अपनी वास्तविकता में बह रही हैं। परंतु मनुष्य नाम को चिपक जाता है, पद को चिपक जाता है, धन को चिपक जाता है; असल स्रोत को भूल जाता है। मनुष्य खुद की महिमा का विस्मरण कर रहा है और दुनियादारी का स्मरण। उसे पुनः प्रतिष्ठित होना होगा अपने असल रूप में जिसके लिए ध्यान उसकी पूर्ण मदद करेगा।

प्यारे साधको!

महावाक्यों को रट कर क्या? अगर आपने अपनी वास्तविकता का अनुभव नहीं किया तो वह तो मधुमक्खी के द्वारा इकट्ठे किए हुए रस जैसा हुआ। कुछ मानवरूपी मधुमक्खियों के द्वारा आपका शरीर का गठन हुआ। परंतु आपको अपने असल रूप का बोध है? आपको अपने मधुत्व का बोध है? आपको बोध है कि आप मूल में अमृत की संतान हैं? आप तो यहाँ आकर खटास, तिखास और खाराश में जीने लगे। अगर आप अपने असल रूप को भूल गए तो जीवन पाने का अर्थ क्या?

दोस्तो! शरीर जीवन नहीं है। जीवन तो आत्मा से है। जीतेजी निर्बोध और निर्जीव जैसे बने रहने का क्या अर्थ? आपने यह सब कभी सोचा है? अगर नहीं सोचा है तो अब सोचो। वैसे तो ये सब सोच के पार की बातें हैं। परंतु पार जाने के पहले की जो तैयारी है, उसे मैं सोच कहती

हूँ। पहले सही सोच, फिर सम्यक विचार, फिर सम्यक धारणा, फिर ध्यान और ध्यान से अनुभूतियाँ।

दोस्तो! तत्त्वमसि श्वेतकेतु का चिंतन जेरुसलाम के पास नहीं था। फिर भी इसू ने इस सत्य को पा लिया। जीवन में उतार लिया। अगर ऐसा नहीं होता तो अपनी सूली को अपने कांधे पर उठाकर, एक आदमी उसके शरीर में खीले ठोके जाने पर और उसे कांटों का ताज पहनाए जाने पर भी बिना किसी शिकायत जल्लादों के लिए दुआ कैसे कर सकता? इसू अपने अंतिम क्षणों में कहता है कि हे प्रभु! उन्हें बोध नहीं है कि वे लोग क्या कर रहे हैं? उन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो।

दोस्तो! यह बात प्रज्ञानम् ब्रह्म या अहम् ब्रह्मास्मि अथवा तत्त्वमसि से बिलकुल भिन्न नहीं लगती। यहूदियों के पास कहाँ था वेद ज्ञान? फिर भी इसू के हृदय में यह ज्ञान प्रकट हो गया। दोस्तो! इसू समझता था कि अगर उसको मारने वाले सत्य को जान लेंगे तो वही ब्रह्म की उपलब्धि है। सत्य को जानने के बाद वे लोग ऐसा क्रूर काम नहीं कर पाएंगे। मरते वक्त इसू को उस बात का दुःख नहीं हो रहा है कि उसे भयंकर यातना सहन करनी पड़ रही है परंतु वे लोग सत्य को नहीं जानते हैं इस बात के लिए करुणा प्रगट होती है। इसू का कहना यह है कि अगर वे स्रोत को जानते तो मुझे मारने की क्रूरता नहीं कर सकते। परंतु उन्हें बोध नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं? बोध इसलिए नहीं है कि उन्हें स्वयं का बोध नहीं है। वे तत्त्वमसि को नहीं जानते हैं। अगर तत्त्वमसि को जानते तो उन्हें पता चल जाता कि उनका और मेरा सूक्ष्म स्रोत एक ही है। हम भिन्न नहीं हैं। खैर!

वे भले न जाने परंतु मैं तो जानता हूँ कि वे भले अज्ञानी है फिर भी मुझ से जुदा नहीं है। वह मैं ही हूँ। मरने वाला, मारने वाला, मृत्यु और आत्मा सब एक है।

प्यारे साधको!

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि पहले अनुभूतियाँ होती हैं फिर वह अनुभव शास्त्र बनता है। शब्द भले अलग अलग हों परंतु सत्य एक ही है। सत्य में यहूदी, इसाई, हिन्दू या इस्लाम का भेद नहीं होता। मनुष्य हजारों वर्षों से सत्य पर भाषा और धर्मों के आवरण चढ़ाता रहा है। परंतु इससे सत्य नहीं बदलता, वह मूल रूप में ही रहता है। इसीलिए तो इसू की वाणी को भी धर्मवाणी कहा है और कृष्ण की वाणी को भी धर्मवाणी। इसी कारण से वेदों को अपौरुषेय कहा। अर्थात् वह किसी मनुष्य की बुद्धि की उपज नहीं है। क्योंकि मनुष्य धर्म को देश, भाषा, और जाति की सीमाओं में बांध सकता है। परंतु वेदज्ञान इन सारी सीमाओं के पार है।

एथेंस की गलियों में कौन जानता था तत्त्वमसि को ? परंतु सोक्रेटिस ने वेदों को पढ़े बिना ही वेद ज्ञान प्राप्त कर लिया। वेद का अर्थ ही है, सत्य। सत्य वेद पढ़ने से नहीं आता, वह तो ध्यान से उतरता है, सभानता में से पनपता है, निरंतर साधना और अनुभूतियों में से जन्म लेता है। सोक्रेटिस ने अगर तत्त्वमसि नहीं जाना होता तो मृत्यु की कुछ क्षण पहले बड़ी निर्भयता और सहजता से उसके लिए ज़हर तैयार करने वाले के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार नहीं कर सकता और न ही सहजता से ज़हर पी सकता था।

मीरा भले भक्ति मार्गी थी। उसके लिए उसका परब्रह्म श्रीकृष्ण ही थे। उसका प्रेम उसके लिए सर्वशक्तिमान था। तत्त्वमसि को मीरा ने

पढ़ा होगा कि नहीं, या सुना होगा कि नहीं यह हम नहीं कह सकते। परंतु उसका अनुभव जरूर कर लिया होगा। तभी तो राणा के द्वारा भेजा हुआ जहर का प्याला मीरा मुस्कुराती हुई पी गई। मंसूर ने अगर तत्वमसि का अनुभव नहीं किया होता तो जितनी क्रूरता से उसके अंगों को काटा गया था। उस क्रूरता और असह्य पीड़ा को वह सह नहीं सकता था परंतु उसके ब्रह्म ज्ञान की वजह से हर रंग में, हर रूप में उसे परमात्मा ही दिखाई देते थे और वह मरते दम तक पुकारता रहा अनलहक, अनलहक।

दोस्तो! यह वेद का महावाक्य नहीं तो और क्या है? यह मंसूर का वेद वाक्य है। इस बात को मैंने कहीं विस्तार से लिखा है।

तेरी खुशबू तेरी मस्ती, तेरी हया तेरा सुकून।
 नहीं कोई छीन सकता है, भले खुद मौत भी आए॥
 अरे बनके नशा सबके, दिलो दिमाग पे छा जा।
 भले कुछ लोग सच के घूंट पीकर, होश को खो दें।
 नहीं तलवार ना खंजर, नहीं बंदूक न गोली।
 तू कर दे वाल फूलों से, जो तेरे दिल में खिलते हैं॥
 सनम में ऐसे मिल जा, खून में लाली मिले जैसे।
 या परवाने की तरह, उस शमा की आग में जल जा॥
 यहाँ सोना गुनाह है, जागना ही है तेरा मज़हब।
 अगर पक्का है बंदा तो, इलम को जान ले प्यारे॥
 तमन्ना जो उठे ऐसी, फ़ना की कोई भी दिल में।
 तो मंज़ूर हो गई पूरी तरह से बंदगी तेरी॥

दोस्तो! मेरा तत्त्वमसि का अनुभव मैंने इन पंक्तियों में उतारा है।
बस, इसी तरह हर ज्ञानी ध्यानी की अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न रूप से होती
रहती है परंतु अनुभव समान होते हैं।

तो दोस्तो! अब चलो हो जाओ तैयार तत्त्वमसि ध्यान के लिए।
प्रतिपल चिंतन बनाए रखो वह तू ही है।

जो देखो, जो सुनो, जो अनुभव करो, भले भला बुरा कुछ भी
हो। खुद को न्याय देने में मत पड़ना। आपको सिर्फ एक ही ध्यान देना है
कि आपके द्वारा या किसी और के द्वारा, जड़ में या चेतन में जहाँ भी जो
कुछ भी घट रहा है वह तू ही है, तू ही है, तू ही है।

दोस्तो! जो इतनी समझ पनप गई तो मान लो कि आप पार उतर
गए।





धरणा - 94

अहंब्रह्मास्मि भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 94

स्वयं ब्रह्म हूँ यह दृढ जानि, निज रूप ध्यान धरे अति ज्ञानी॥

ध्यान विधि - 94

“ मैं ही ब्रह्म हूँ ”- इस
सत्य का दृढ़ भाव करके
निज स्वरूप पर ध्यान
करते करते अति ज्ञान में
प्रवेश कर लो ।



ध्यान : एक नई दिशा (भाग-7) / 159

दो

स्तो! ये सब बातें अजीबो-गरीब लगती हैं परंतु सत्य हैं। शास्त्रों की प्रतीकात्मक भाषा को समझना चाहिए। ये बातें चर्चा से समझ में नहीं आती हैं परंतु ध्यान से समझ में आ सकती हैं। क्योंकि ध्यान में अनुभव होता है। अनुभव के सिवाय तो सारी बातें बातें ही हैं। वे बातें मैं करूँ, वेद की किताबें करें या कोई और करे कोई फर्क नहीं पड़ता; सत्य तो अनुभव ही है। वही है सबसे बड़ा प्रमाण और वही है सबसे बड़ा ज्ञान। सत्य ज्ञान का जब अनुभव होता है तब ध्यानी के भीतर से आवाज़ उठती है कि -

मेरा बसना है सातों आसमानों की बुलंदी में
मेरी ये राजेहस्ती तो समन्दर से भी गहरी है।।

प्यारे साधको!

यजुर्वेद के बृहदारण्यक उपनिषद् में अहंब्रह्मास्मि वाक्य है। यह यजुर्वेद का एक महावाक्य है। अहंब्रह्मास्मि का अर्थ है कि मैं ब्रह्म हूँ। दोस्तो! वैसे तो ब्रह्म भाव को लेकर मेरे ध्यान विषयक ग्रंथों में कई विधियाँ आई हैं परंतु प्रत्येक में धारणा भिन्न है। क्या पता कौन सा साधक किस भावना का आधार लेकर पार उतर जाए?

दोस्तो! अहंब्रह्मास्मि महावाक्य के पहले उपनिषद् प्रश्न उठाता है कि उस ब्रह्म में क्या जाना? जिससे वह सर्व हुआ? अर्थात् वह सर्वव्यापी बन गया। तब वेद ही उत्तर देता है कि पहले से वो ब्रह्म ही था और उसने स्वयं को ही जान लिया कि मैं ब्रह्म हूँ और इस तरह से वह सर्वव्यापी बन गया। जिन जिन देवों ने उसे जाना वे सब उसमें तद्रूप हो गए और ऋषि-मुनि तथा मनुष्यों में से भी जिस जिस ने उसे जाना वे उसमें तद्रूप हो गए। वाम देव ने उसे जान लेने के बाद कहा कि मनु भी मैं और सूर्य भी मैं। अंबा ने उसे जाने लेने के बाद कहा कि रुद्र भी मैं, विष्णु भी मैं और ब्रह्मा भी मैं।

दोस्तो! इस प्रकार ब्रह्म को जान लेता है। वह कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं सर्व हूँ। उसे जान लेने वाले मनुष्य को देवता भी पराजित नहीं कर सकते। क्योंकि उसे जानने के बाद वह मनुष्य सबकी आत्मा हो जाता है। वेद कहता है कि अगर देव भी “मैं अन्य हूँ और वह अन्य है” ऐसा मानता है और सत्य को नहीं जानता तो ऐसा देव पशु की तरह देवताओं में पशु है।

प्यारे साधको!

बात सीधी सपाट है परंतु इस सत्य को समझने के लिए आपका ध्यानस्थ होना अनिवार्य है। जिस मनुष्य का ध्यान में प्रवेश हो जाता है वही इन सारे सत्तों को समझ सकता है। ध्यान योग का सातवां सोपान है। मैंने सुना है कि सात आसमान हैं, उसके आगे कुछ भी नहीं है। इस बात का मैं अगर प्रतीक की तरह उपयोग करूं तो योग का एक एक अंग साधक को एक एक आसमान की ऊंचाई तक पहुंचाता है। ध्यान सातवां सोपान है अर्थात् सातवें आसमान की ऊंचाई के समान है। दोस्तो! ध्यान के बाद क्या है? ध्यान के बाद बचता है केवल अहं ब्रह्मास्मि का बोध। यही है संबोधि, समापत्ति या समाधि कुछ भी कह लो। वह ब्रह्म सदा समाधि में रहता हुआ भी सक्रिय है। यही उसकी परम उपलब्धि है।

दोस्तो! फिर तो उलट बांसिया शुरु होती हैं। जिन्हें समझना मुश्किल है। गीता में श्रीकृष्ण एक ऐसे वृक्ष का वर्णन करते हैं कि जिसके मूल ऊपर हैं और शाखाएं नीचे। कैसी विचित्रता? परंतु मैं इसका अर्थ करती हूँ कि इस शरीर की अंगो रूपी शाखाएं पृथ्वी की ओर भले हिलती डुलती और झूलती रहें परंतु उसके मूल संसार में नहीं हैं। वह तो ऊपर उठ गए हैं। दोस्तो! गीता इस वृक्ष का नाम पीपल देती है। पीपल का पेड़

अनेक बार अनेक ऋषि-मुनियों के लिए ज्ञानोपलब्धि का माध्यम रहा है। इसे ज्ञान का प्रतीक कह लो तो भी चलेगा। शिव पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगाते हैं और बुद्ध को पीपल के वृक्ष के नीचे ज्ञान घटित हुआ था।

दोस्तो! ये सब बातें अजीबो-गरीब लगती हैं परंतु सत्य हैं। शास्त्रों की प्रतीकात्मक भाषा को समझना चाहिए। ये बातें चर्चा से समझ में नहीं आती हैं परंतु ध्यान से समझ में आ सकती हैं। क्योंकि ध्यान में अनुभव होता है। अनुभव के सिवाय तो सारी बातें बातें ही हैं। वे बातें मैं करूँ, वेद की किताबें करें या कोई और करे कोई फर्क नहीं पड़ता; सत्य तो अनुभव ही है। वही है सबसे बड़ा प्रमाण और वही है सबसे बड़ा ज्ञान। सत्य ज्ञान का जब अनुभव होता है तब ध्यानी के भीतर से आवाज़ उठती है कि –

मेरा बसना है सातों आसमानों की बुलंदी में

मेरी ये राजेहस्ती तो समन्दर से भी गहरी है।।

अहंब्रह्मास्मि भाव की कुछ झलकियाँ पाने वाले की आत्मा पुकार उठती है कि

अब ज़मीन में कोई मेरी जड़ नहीं

पेड़ ऐसा हूँ सफल में तेरे दर।।

दोस्तो! ध्यान से जीवन समाप्त नहीं हो जाएगा, उससे डरना नहीं, ध्यान में तो विशेष उच्चतम जीवन की प्राप्ति होगी, एक सही जीवन की प्राप्ति होगी। हमारे यहाँ कोई साधु संत की मृत्यु होती है तो भक्तगण कहते हैं कि ब्रह्मलीन हो गए। इसका अर्थ यह हुआ कि आपकी मृत्यु भी मृत्यु न रहकर मूल स्रोत में समाना बन जाए। यह मृत्यु की ऊंचाई है।

परंतु ध्यान में जो ब्रह्मलीनता घटित होती है वह केवल बाहरी संसार की मृत्यु है और परमात्मा से मिलन है। आपको ध्यान में ब्रह्मलीन होना है। ब्रह्मलीन शब्द से आप डरना नहीं। जरूरी नहीं कि हर साधू मरने के बाद ब्रह्म में लीन हो जाए या हर ध्यानी ध्यान में ब्रह्मलीन हो जाए। मेरी नज़रों से तो जीते जी ब्रह्म में लीन हो सकता है वही मृत्यु के बाद ब्रह्मलीन अवस्था को प्राप्त करता है बाकी तो सब मरते हैं और पीछे से भक्त लोग एक आध्यात्मिक शिष्टाचार में अखबार में या भंडारे के निमंत्रण में लिखते हैं कि ब्रह्मलीन फलाना फलाना...

दोस्तो! ध्यानयोग में जिसका प्रवेश हो गया वह कभी मरता नहीं वह तो जीते जी और मरने के बाद भी ब्रह्मलीन ही होता है। मैंने एक भजन में लिखा है -

संतो जोगी नाहि मरे... संतो जोगी नाहि मरे

दश दश सुंदरी सेवा में है जोगी नाही डगे
पंच तत्व का तंबू लगा के हृद अनहृद विचरे
संतो जोगी नाही मरे

नव दरवाजे खुले पड़े हैं जोगी नाही डरे
जमड़ा तो झक मारे साधक हर पल मस्त रहे
संतो जोगी नाही मरे

मन उपवन में हंसा बैठा मोतियन चारा चरे
सदानंद के आसमान में निडर रही विहरे
संतो जोगी नाही मरे

हृदय गुफा में धुनी रमाई अवधूत तप से तपे
अहंकार की लकड़ी जलाई भभूत से अंग मले

संतो जोगी नाही मरे

सहस्रार के सिंहासन पे बैठ के ध्यान धरे
पंच विषय से पूरन ब्रह्म को पाकर पार लगे

संतो जोगी नाही मरे

सदा समाधि के शिखरों पर अलख के संग रमे
चित में चिता जला के हरदम काम अरु क्रोध झरे

संतो जोगी नाही मरे

देह नगर में जोगी आया सबकोई ज्ञान ग्रहे
जनम मरण के रथ में बैठी भवसागर में तरे

संतो जोगी नाही मरे

“मोहिनी” जोगी जग में आकर जगदोद्धार करे
दुरबुद्धि की बला को बांधी द्वंद्व से मुक्त करे

संतो जोगी नाही मरे

प्यारे साधको!

साधारण आदमी मरता है। सच्चा योगी कभी मरता नहीं वह शरीर के छूटने के बाद भी ब्रह्मलीन रहता है। क्योंकि जीवनभर जैसी उपासना रहती है ऐसा ही अंतिम परिणाम आता है। जो साधक जीवनभर अहं ब्रह्मास्मि भाव में बरतता है वह कैसे मरेगा? ब्रह्म को कौन मार पाएगा? वह तो सदाबहार है, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, अजन्मा, अविनाशी, अलक्ष्य, अजर और अमर है।

पा लिया है मैंने ऐसे बाग को,
एक भी काँटा नहीं ना कोई डर।।

हूँ हिमाला बर्फ हूँ बुलंदी हूँ,
ढूँढ ना पाओ जहाँ कोई पत्थर।।

आग की लपटें हूँ पर जलती नहीं,
 ना जलाती हूँ नहीं करना फिकर॥
 पूल हूँ रंगीन खुशबूदार मैं,
 कोई डाली की मुझे अब ना गरज़॥
 हूँ बहारें यारो बारह मास की,
 खौफ़ ना पतझड़ का अब मेरे भीतर॥
 चाँद हूँ बढ़ता ही जाता हर घड़ी,
 खिल गया हूँ अंधेरो को पार कर॥
 ऐसा हूँ सूरज अंधेरा खो गया,
 आना जाना मिट गया अब धरती पर॥
 मैं सितारा जाविदा मेहफ़िल का हूँ,
 अब नहीं गिरना मुझे विश्वास कर॥
 बाग-माली-फूल बिन खुशबू हूँ मैं।
 होश आ जाए अगर मेहसूस कर॥
 मैं समंदर पर मेरा जल जल गया।
 कोई तूफ़ान मोज ना गहराई पर॥
 सारे बादल इस फ़लक से छट गए।
 नूर की बारीश से हूँ तरबतर॥
 हूँ हवा, मैं सर्द बहती हूँ सदा।
 कोई पहरा है नहीं मेरे ऊपर॥
 मैं कमल खिलता हुआ कीचड़ बिना।
 देख पाओ, देख लो मेरे भीतर॥
 इल्म हूँ मैं इल्मी मुझ में छिप गया।

जान लो मुझको अगर इतना जिगर॥
 यारो मैं रफतार ऐसी तेज़ हूँ।
 अक्ल ना कर पाएगा पूरा सफर॥
 अब कोई रोके ना कोई टोक दे।
 मेरी तो है आसमानों में डगर॥
 तू भी आ सकता है मेरी बज़्म में।
 हो ख़तम पहले, थोड़ा कर ले सबर॥
 तू मुझे तब ही समझ पाएगा सुन।
 छोड़ के दुनियां तेरे अंदर उतर॥
 हूँ सहारा मैं ज़मीं और फलक का।
 ढूँढ पाओगे नहीं तुम मेरा घर॥
 'मोहिनी' को ना समझ तो ना समझ।
 ख़ामख़ा हर दर पे ना तू फोड़ सर॥

प्यारे साधको!

मैंने कोशिश की है कि अनुभूति में से आए हुए कुछ अभिव्यक्ति
 से आपको अहंब्रह्मास्मि भाव ध्यान को समझने में मदद मिल जाए। जहाँ
 चाह है वहाँ राह है। अगर आप एक वास्तविक खोजी हैं तो उतरो ध्यान
 में।

ध्यान योग की बुलंदियाँ और उसके आनंद को अभिव्यक्त करता
 हुआ मेरा एक भजन यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ। ताकि आपको ध्यान में अगर
 ऐसी कोई झलक मिले तो आप घबरा न जाओ और आगे बढ़ो।

जोगिया जोग लगा

जोगिया जोग लगा

कोई धरती नहीं थी नहीं था आसमान
जोगी इतनी पुरानी जोग की दासतान
ज्ञानी ध्यानी प्रेमी पे जोग है महेरबान
जोग का जल्वा देखा मैं तो हूँ बेजुबान

जोगिया जोग लगा.. जोगिया जोग लगा

फूल की पत्तियों से जोग हल्का है जोगी
हिमाला शिखरों से जोग भारी है जोगी
जोग जिंदा जलाए जोग दे जिंदगी को
जोग अपना पराया मिटा दे तिश्नगी को

जोगिया जोग लगा.. जोगिया जोग लगा

जोग चंदा से गोरा जोग सूरज से उजला
गंगा जमना की धारा जोग के कारण उतरा
जोग जम जम का झरना बन के दिल में है फूटा
जोग के कारण तेरी दुनिया दे तू लुटा

जोगिया जोग लगा.. जोगिया जोग लगा

जोग के नूर को मूसा ने पा लिया
उसी नूर से ही महंमद खुद से घबरा गया
उसीके वासते हुआ मन्सूर हलाल
इसू सूली चढ़ जाए जोग का जो कमाल

जोगिया जोग लगा.. जोगिया जोग लगा

जोग की याद में आंख भर आये तो
मीरा की तरह तेरे घुंघरू बज जाए तो
“मोहिनी” जान ले तू मुकद्दर है बड़ा
जोग है दस्तक देता दरिचे पे खड़ा
जोगिया जोग लगा.. जोगिया जोग लगा

प्यारे साधको!

अब उतरो ध्यान में। दोस्तो! इस ग्रंथ के उपसंहार में मैं कह रही हूँ कि इसमें दी हुई सारी ध्यान विधियों को समय की अवधि में मत बांधना। घटना घटेगी तो पलभर में घट जाएगी और नहीं घटी तो जल्दी किए बिना ब्रह्मभाव बनाए रखो और उसी ढंग से जीते जाओ। अचानक एक दिन भीतर से कोई कहने लगेगा अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि।





एक महाचेतना के परिचय का प्रयास.....

कोई व्यक्ति हो तो हम परिचय भी दें। परंतु एक घूमती फिरती चेतना का परिचय शब्दों से देना कैसे संभव होगा!

प्रबुद्धत्व के प्रवाह में गुरुमैया डॉ हरेश्वरीदेवीजी एक नया उद्गम है, एक अपूर्व आरंभ है। आज तक के किसी भी धर्म संप्रदाय सूत्रों में न जुड़कर समाज को एक नई दिशा दर्शन कराने वाली एवं धर्मक्रांति करने वाले तथा ध्यान-योग में एक विशिष्ट खोज करके ध्यान-योग में उत्क्रांति करने वाली विश्व की प्रथम नारी ऊर्जा है।

प्रत्येक युग में ज्ञान और भक्ति के मार्ग में एक विशेष नारी ऊर्जा का प्रभाव रहा है। वह फिर गार्गी हो, मैत्रेयी हो या मीरा परंतु ध्यान मार्ग में पूज्य गुरुमैया एक नया शुभारंभ है। जिसकी नींव कोई धर्म या दार्शनिक परंपरा पर नहीं है। बचपन से ही निर्भीकता, तेजस्विता, स्वतंत्रता एवं वाणी में ओजस्विता वे उनके सहज गुण रहे हैं।

एकांत स्थान में रहना, प्रकृति को आत्मसात करना और कठिन साधना पद्धतियों से गुजरना एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन करना यह गुरुमैया का स्वभाव है।

तथाकथित धर्मगुरुओं, द्वेषपूर्ण हृदय के लोगों, और काले पत्रकारित्व की ओर से उठती हुई बाधाओं के सामने हिमालय की भांति अडिग रहकर समाज को सही धर्म के लिए जगाना ये गुरुमैया का अभियान रहा है।

ऐसी अपूर्व नारी ऊर्जा का जन्म २४ जून अषाढी बीज सन् १९६४ में हुआ। आरंभ के पैंतीस वर्ष तक धर्मक्रांति और ध्यानक्रांति के द्वारा मानव मन के परिमार्जन का कार्य किया और अब गुजरात के संस्कार नगरी वडोदरा में ध्यान मंदिर की स्थापना करके लोगों को आध्यात्मिक रूप से सजग कर रही हैं। भौतिक सुखों से तृप्त तथापि अतृप्त और शांति के खोजियों के लिए पूज्य गुरुमैया एक कल्पवृक्ष बनकर आध्यात्मिक छत्रछाया दे रही हैं और ध्यान के माध्यम से मनुष्य को आत्मसंतोष के विश्व का दर्शन उनके भीतर ही करा रही हैं। पूज्य माँ कहती हैं कि—

मुसाफिर हूँ जगाने आई हूँ खलकृत के लोगों को।

चली जाऊँ तो तुम चुपचाप मेरे काम में लगना।।

उपरोक्त मुक्तक ही प्रबुद्धात्मा गुरुमैया हरेश्वरीदेवीजी के

परिचय के लिए काफ़ी है। फिर भी कुछ कहना चाहता हूँ -

प्रबुद्ध रहस्यद्रष्टा माँ हरेश्वरीदेवीजी विश्व के आज तक के ध्यानगुरुओं में सर्वप्रथम एक ऐसी नारी ऊर्जा है कि जिन्होंने ध्यान की अनेक नई विधियों की शोध की और कुछ प्राचीन विधियों की पुनर्शोध करके भाषा को सरल बनाकर ध्यान सुक्तियाँ नाम से नया ध्यान शास्त्र रचकर ध्यान पिपासुओं को उन विधियों की वैज्ञानिक समझ भी दी। विश्व को एक ऐसे ध्यान शास्त्र की आवश्यकता थी जिसे मनुष्य आसानी से समझ पाए। एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के नाम से मानव मूल्यों का हास भी ना हो तथा धर्म के ऐसे जड़ बंधन भी न हों कि जहाँ मानव मुरझा जाए। विश्व को एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ मनुष्य को भगवद्ता, नैतिकता, मानव मूल्य, ब्रह्मचर्य या अनुशासन सिखाना न पड़े, ना उसके ऊपर ये बातें थोपनी पड़ें परंतु साधक एक ऐसा माहोल प्राप्त करे कि उसकी जीवन शैली सहजता से बदल जाए। शुभ विचार और सदगुण उसमें पनपने लगें।

विश्व को ऐसा माहोल देने के लिए पूज्य गुरुमैया अंतिम पैतीस वर्ष से विविध मार्ग से आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रहे हैं। मैं अब स्वानुभव के द्वारा कह रहा हूँ कि अब पूज्य गुरुमैया के द्वारा एक ऐसे माहौल का निर्माण हो चुका है।

पूज्य गुरुमैया अनेकानेक भ्रमजालों में घिरे हुए समाज को धीरे धीरे मुक्त कर रहे हैं। एक नारी शक्ति के द्वारा उठाई गई ये चुनौति कोई साधारण नहीं है। पूज्य गुरुमैया का जन्म गुजरात-सौराष्ट्र के भावनगर जिले के गढड़ा स्वामीना में एक औदीच्य ब्रह्माण परिवार में २४ जून १९६४ में हुआ। गढड़ा जैसे गाँव में इसे धर्म के एक अति से दूसरी अति पर पहुँची हुए एक कुदरती घटना ही कह

सकते हैं। पूज्य गुरुमैया ने सन्यास लेकर कोई नाम नहीं बदला। अपने माता पिता को ही गुरु मानकर अध्यात्म के आसमान में बचपन से ही उड़ना शुरू किया।

एक अपार प्रतिभा संपन्न नारी ऊर्जा का नाम है ध्यानगुरु हरेश्वरीमैया। एक सर्जक, चिंतक, कवयित्री, आयुर्वेदज्ञ, योगिनी, धर्म प्रवक्ता, पुराणों की नवसर्जक, योग-शास्त्र और ध्यान-शास्त्र रचयिता उपरांत एक सींगर, कम्पोज़र, ध्यानगुरु और वात्सल्य मूर्ति विश्व माता।

पूज्य गुरुमैया ने सिर्फ १४ साल की उम्र में ज्ञानोपलब्धि के बाद महाभिनिष्क्रमण किया। जीवन के सही दर्शन हेतु वह कूद पड़ी पूर्ण असुरक्षितता में। पर्ण-कुटी लगाकर दो वर्ष तक अन्न त्याग हुआ और आध्यात्मिक संघर्ष के साथ साथ आत्मोन्नति होती गई।

जैन शास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्ध कहे हैं-उनमें से एक प्रकार है, स्वयंसिद्ध। पूज्य गुरुमैया को हम स्वयंसिद्ध चेतना कह सकते हैं। धर्मक्रांति करते करते ही स्वयं के बल बूते पर विद्याप्रेमी पूज्य गुरुमैया ने फिर से अभ्यास शुरू किया। बी.ए., एम.ए. के बाद एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा से पीएच.डी. की डिग्री भी प्राप्त की। अपने भीतर पड़ी कलाओं को भी विकसित किया। भारत के कई राज्यों में करोड़ों लोग पूज्य गुरुमैया के सत्संग, प्रवचन, ज्ञानयज्ञ एवं ध्यान-शिबिरों द्वारा लाभान्वित हुए। गुरुमैया के धर्मक्रांतिपूर्ण विचारों का प्रचंड हकारात्मक प्रतिसाद मिला। ऐसे आरोह अवरोह में से गुज़रकर एक छोटी सी गंगोत्री धर्मक्रांति एवं ध्यानकार्य करते करते अब तो बन गई है एक महासागर।

अनेक नूतन ध्यान विधियों की पुरस्कर्ता पूज्य माँ यूरोप, आफ्रीका और यू.एस.ए. आदि खंडों में धर्मक्रांति और ध्यानशिबिरों

के लिए यात्रा कर चुकी हैं। किसी भी धर्मसंप्रदाय के संगठन में जुड़े बिना स्वपुरुषार्थ, आत्मबल और अतिचेतस शक्तियों के द्वारा पूज्य गुरुमैया ने जो नूतन धर्म अभियान का आरंभ किया है उसके लिए पूरा विश्व उसका ऋणी रहेगा तथा नई दृष्टि और नया जीवन पाता रहेगा।

मैं कहता हूँ कि पूज्य गुरुमैया ने विश्व को ध्यान के लिए तंदुरस्त माहोल, विचार, नई दृष्टि एवं दिशाएं दी हैं इसलिए विश्व पूज्य माँ का ऋणी रहेगा। परंतु पूज्य माँ हमेशा कहती हैं कि मैं तो ये सब करके अस्तित्व का ऋण चुका रही हूँ पृथ्वी पर की मेरी यात्रा के दौरान।

—पूज्य गुरुमैया का अनुग्रहपात्र शिष्य
एवं आश्रम का अंतेवासी
योगी स्वामी शैलेश्वर



साधना के सुनहरे सप्त सोपान

१. प्रत्येक विधि अनुभवी ध्यान गुरु के मार्गदर्शन में हो तो ज्यादा अच्छा।
२. प्रत्येक विधियों को अपने ढंग से नहीं परंतु उचित रूप से समझने के बाद ही साधना का आरंभ करें।
३. किसी भी विधि को कम से कम २४ मिनिट करें।
४. अनुकूल विधि में कम से कम ३० दिन से लेकर ९६ दिन तक उतरे।
५. यदि संभव है तो इन ९६ दिनों के दौरान कुदरत के सानिध्य में अथवा किसी शांत आश्रम में निवास करें।
६. सात्विक आहार, सज्जनों का संग, मौन और नशाकारक पदार्थों से दूर रहना – ज्यादा हितकर है।
७. साधना समय के वस्त्र अलग रखें। सफेद, भगवा अथवा हरा रंग ज्यादा सहयोग कर पाएगा। वस्त्र खुले और स्वच्छ होने चाहिए।

- : ध्यान मंदिर :-

ए-५, सनमून पार्क, अकोटा, वडोदरा, गुजरात, भारत

www.maaharishwaridevi.com. email: info@maaharishwaridevi.com